श्री महेन्द्र पुस्तकमाला पुष्प ५

मानस-प्रसङ्ग



[पाँचवाँ भाग]

लेखक

"मानस-राजहंस" पंडित विजयानन्द त्रिपाठी

श्रीमान् नरेन्द्र महाराज महेन्द्रसिंह जू देव, नागौद नरेश के शुभ दान से प्रकाशित

प्रकाशक
मंत्री—मानससंघ
पो० रामवन, वाया सतना

प्रथम संस्करण] [मूल्य ।≈)॥

श्री महेन्द्र पुस्तकमाला

श्रीरामचरितमानस तथा गोस्वामीजीके अन्य ग्रंथोंके आधार पर विविध विषयोंकी उपयोगी पुस्तकोंका प्रकाशन 'श्रीमहेन्द्र पुस्तकमाला' द्वारा करनेकी अनुमति मानससंघको प्रदान करनेकी कृपा श्रीमान् नरमेन्द्र महाराज महेन्द्रसिंह जू देव नागौद नरेशने की है। संघ इसके लिये आपका विशेष आभारी है।

हर्ष है कि मालाकी यथेष्ट उन्नति हो रही है। यह पाचवाँ पुष्प "मानस-प्रसङ्ग" पांच भागों में पूर्ण होगा। अन्य पुस्तकें भी तैयार हो रही हैं।

शारदा प्रसाद
मन्त्री—मानससङ्घ
पो० रामवन, वाया सतना।

मानस-सङ्घ

श्रीरामचरितमानस के प्रचार द्वारा जगतका परम कल्याण हमारा उद्देश है।

केवल एक बार ।|) शुल्क देकर जीवन भरके लिये आप सङ्घ के सदस्य बन सकते हैं।

प्रत्येक सदस्यको वर्ष में श्रीरामचारितमानसके दो पारायण करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। दो नये सदस्य बनाने चाहिये।

देश में मानस सङ्घ के सहस्त्रों सदस्य हैं और सैकड़ों शाखायें हैं। एक स्थान पर ६ सदस्य होने पर शाखा हो जाती है।

सङ्घ मानस पारायणका प्रचार करता है। इस कार्य के लिये 'मानसमणि' मासिक पत्र निकालता है और पुस्तकें प्रकाशित करता है।

सङ्घ के इस समय चार ग्रन्थ माला निकल रही हैं। १—श्री मानस रत्नावली ग्रन्थ माला २—श्री महेन्द्र पुस्तकमाला ३—श्री कौशलेन्द कथा माला ४ - श्री रामदास भक्तमाला।

आप सदस्य बनें, दूसरों को बनावें, पत्र मंगावें और पुस्तकोंका अध्ययन करें। सदस्य फार्म यहाँ लिखने से भेज दिये जावेंगे।

निवेदक · मन्त्री, मानस संघ।

महेन्द्र पुस्तकमाला

२/29

पुष्प ५

मानस-प्रसङ्ग



[पाँचवाँ भाग]



लेखक

'मानस-राजहंस' पंडित विजयानंदजी त्रिपाठी

प्रकाशक
मन्त्री—मानससंघ
पो० रामवन,
वाया सतना।



मुद्रक
माधो प्रिंटिंग वर्क्स
इलाहाबाद।



मानस-प्रसङ्ग

[पाँचवाँ भाग]

सानुज राम विवाह उछाहू।
सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥
कहत सुनत हरखहिं पुलकाहीं।
ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥३॥

अर्थ—भाइयों के सहित रामजी का विवाहोत्सव ही सबको सुख देने वाला इस नदी की उमङ्ग—बाढ़ है। इसे कहते सुनते जो हर्षित और पुलकित होते हैं, वे ही इस नदी में प्रसन्न मन से स्नान करने वाले पुण्यात्मा लोग हैं।

राम विवाह उछाहू—गृहस्थ जीवन में अनेक अवसर उत्साह के आते हैं, परन्तु पुत्र के विवाह का उत्साह ही सब उत्साहों से बड़ा है। आज भी जगत में जो उत्साह पुत्र के विवाह में होता है, वैसा कभी नहीं होता, किंपुनः श्रीरामजी के विवाह का उत्सव। श्रीरामजी के धनुष तोड़ने के बाद ही जब दूत अयोध्या गए तभी तमाम संसार में उछाह भर गया, यथा—

भुवन चारि दस भयउ उछाहू।
जनकसुता रघुबीर बिवाहू॥
बहुत उछाह भवन अति थोरा।
मानहु उमँगि चला चहुँ ओरा॥

जिस दिन समाचार अयोध्या पहुँचा उसी दिन बारात चल पड़ी। उत्साह इतना बढ़ा हुआ है कि ग्रंथकार सगुन का भी नाचना वर्णन करते हैं, यथा—

मङ्गल सगुन सुगम सब ताके।
सगुन ब्रह्म सुंदर सुत जाके॥
राम सरिस वर दुलहिन सीता।
समधी दसरथु जनकु पुनीता॥
सुनि अस ब्याह सगुन सब नाचे।
अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥

इधर से बारात जनकपुर पहुँची, उधर से भगवान् आये। उस समय का दृश्य वर्णन करते श्री गोस्वामीजी कहते हैं, 'हरषि परस्पर मिलन हित कछुकुचले बगमेल। जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत विहाई सुवेल' जनकपुर की तैयारी देखकर देवताओं के होश ठिकाने न रहे, स्वयम् ब्रह्मदेव आश्चर्य में भूल गए, वितान में केलों के खम्भे, आम के पत्तों को वन्दनवार, बाँस को छाजन, कमल के फूल, भौंरें, चिड़ियाएँ सब रत्ननिर्मित और विचित्र दिखाई पड़े, ब्रह्मसृष्टि की कोई वस्तु ही वहाँ नहीं, तब शिवजी ने सबका समाधान किया, यथा—

देखि जनकपुर सुर अनुरागे।
निज निज लोक सबहिं लघु लागे॥
चितवहिं चकित विचित्र विताना।
रचना सकल अलौकिक नाना॥
विधिहि भयउ आचरजु बिसेखी।
निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥

सिव समझाए देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय विचारहु धीर धरि, सिय रघुबीर बिवाहु॥

यहाँ बारात का वर्णन, समधी का मिलन, विवाह का सत्कार, सब कुछ अपूर्व है, अलौकिक है, इसका पूरा आनन्द तो मूल-ग्रन्थ के पढ़ने में ही मिलेगा।

ऐसा आनन्द तो राम-राज्याभिषेक में ही होना सम्भव था, पर वह हो न पाया, और जब हुआ भी तो महाराज दशरथ न रहे। अतः

महाराज दशरथ का न होना सबको खला, यहाँ तक कि अवधपुर में बाजा तक न बाजा। अतः राम विवाहोत्सव ही श्रीरामचरित भर में सबसे बड़ा उछाह हुआ और कवि का यह कहना उचित है कि प्रभु विवाह जस भयेउ उछाहू। सकहि न बरनि गिरा अहि नाहू।

कविकुल जीवन पावन जानी।
रामसीय जसु मङ्गल खानी॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी।
करन पुनीत हेतु निजबानी॥

सानुज—भाव यह कि अयोध्या में केवल श्री रामजी के विवाह के लिये समाचार आया, और महाराज चक्रवर्तीजी केवल श्रीरामजी के ही व्याह के लिये बारात साज कर चले। भरतजी से कहते हैं 'चलहु वेगि रघुबीर बराता।' और वहां जाने पर चारों भाइयों का व्याह हो जाता है। चार बहुएँ लेकर घर लौटते हैं। उत्साह की पराकाष्ठा है।

बधुन्ह समेत देखि सुतचारी।
परमानन्द मगन महतारी॥
पावा परम तत्व जनु जोगी।
अमृत लहेउ जनु संतत रोगी॥
जनमरंकु जनु पारस पावा।
अंधहिं लोचन लाभु सोहावा॥
मूक बदन जस सारद छाई।
मानहुँ समर सूर जय पाई॥

एहि सुखते सत कोटिगुन, पावहिं मातु अनन्दु।
भाइन सहित बिआहि घर, आए रघुकुल चन्दु॥

सो सुख उमग—अनुज सहित श्रीरामजी के विवाह का उछाह ही इस कविता सरित का शुभ उमङ्ग है। जब जल विशेष आ जाता है, तब नदी उमगती है, और जब आनन्द अधिक आ जाता है तब कविता उमगती है। नदी उमगकर दोनों कूलों को प्लावित करती

चलती है, और यह कविता—सरिता उमग कर आनन्द से लोक वेद विधियों को प्लावित करती चली है।

लोकविधि का प्लावन, यथा—

पहिचान को केहि जान सबहिं अपान सुधि भोरी भईं।
अनन्द कन्द विलोकि दूलह उभय दिसि आनन्द मईं॥

वेद विधि का प्लावन, यथा—

होम समय तनु धरि अनल अतिसुख आहुति लेहिं।
विप्रवेष धरि वेद सब, कहि विवाह विधि देहिं॥

नदी को उमग चाहे किसी के लिये अशुभ भी हो पर इस कविता की उमग अथवा राम विवाह उछाह सबके लिये शुभ है, इसका कारण देते हैं—

सुखद सब काहू—इसलिये शुभ है, कि सबके लिये सुखद है, इसके गान करने और सुनने वाले को सदा सुख होता है, सर्वदा उछाह हुआ करता है, यथा—

उपवीतब्याह उछाह मङ्गल सुनि जे सादर गावहीं।
बैदेहि रामप्रसाद ते जन सर्वदा सुख पावहीं॥
सियरघुबीर विवाह जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहँ सदा उछाह मङ्गलायतन रामजस॥

कहत सुनत—आपस में एक दूसरे से कहने को 'कहत सुनत' कहते हैं, यथा—

विदा किये सिर नाइ सिधाये।
प्रभु गुन कहत सुनत घर आये॥

अथवा जब श्रोता मिलें तो कहने लगे, और जब वक्ता मिले तो सुनने लगे। श्रीरामचरित के सुनने से जितना आनन्द है, उतना कहने में नहीं है। कहने में आयास भी होता है, सुनने में तो आनन्द ही आनन्द है, यथा—

रामचरित जे सुनत अघाहीं।
रस विशेष जाना तिन्ह नाहीं॥

अतः वक्ता को भी श्रोता होने के अवसर को हाथ से न जाने देना चाहिए।

हरषिं पुलकाहीं—जिन्हें कहने सुनने में हर्ष और पुलक होता है, अर्थात् गुण श्रवण से हर्ष होता है, और प्रेम से पुलक होता है, अथवा कहने में हर्ष हो और सुनने में पुलक हो, कहा भी है।

रामहिं सुमिरत रन भिरत देत परत गुरुपाय।
तुलसी जाहि न पुलकतन सो जग जीवत जाय॥

कहत हरसाहीं, यथा याज्ञवल्क।

सुनु मुनि आजु समागम तोरे।
कहि न जाइ जस सुख मन मोरे॥

शिवजी—

मगन ध्यान रस दंड युग, पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेश तब, हरषित बरनै लीन्ह॥

भुशुण्डिजी—

भएउ तासु मन परम उछाहा।
लाग कहइ रघुपति गुनगाहा॥

सुनत पुलकाहीं, यथा—भरद्वाज

बहु लालसा कथा पर बाढ़ी।
नयन नीर पुलकावलि ठाढ़ी॥

उमा—

हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा।
सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा॥

गरुड़—

सुनि भुसुण्डि के वचन सुहाए।
हरषित खगपति पंख फुलाए॥

ते सुकृती—भाव यह कि जिन्हें कहने सुनने में हर्ष और पुलक हो वे ही पुण्यात्मा हैं। श्रीरामचरित-मानस के श्रोता को 'सुरवर' देवता कहा और इस कवितासरित के प्रचार के श्रोता को 'सुकृती' कहा।

कारण यह है कि इस श्रीरामचरित-मानस की कथा ही दो प्रकार की है, एक तो वह कथा है, जिसमें चारो घाटों की कथाओं का सँभार है, रस, अलंकार, लक्षणा, व्यञ्जना ध्वनि आदि का विचार है, वैधीभक्ति, रागानुगाभक्ति वैराग्य ज्ञान विज्ञानादि का विवरण है, शम, यम, नियम, योगादि का विवेचन है, वही कथा 'मानस' के नाम से विख्यात है। उसके वक्ता दुर्लभ हैं और श्रोता अत्यन्त ही दुर्लभ हैं, दूसरी वह कथा है, जो सर्वसाधारण में प्रचलित है, जिसमें सीधा-सीधा कथा का आनन्द है, उपर्युक्त बातों पर वक्ता श्रोता दृष्टिपात नहीं करते, क्योंकि उन विषयों में उनका प्रवेश भी नहीं है। कहना नहीं होगा कि प्रचारं दूसरी प्रकार की कथा का ही विशेष है, क्योंकि इसके वक्ता श्रोता बहुतायत से मिलते हैं इसी प्रचारवाली कथा को श्रीग्रन्थाकार ने सरयू से उपमित किया है, क्योंकि सरयूजी में 'मानस' का ही जल है और सरयूजी सुलभ हैं, गृहस्थी में रहते भी अवगाहन हो सकता है। मानस का अवगाहन दुर्घट है विना गृहस्थी के प्रेम के शिथिल किये उसका अवगाहन नहीं हो सकता, अतः 'मानस' के अवगाहन करनेवाले को 'सुरवर' कहा और सरयू के अवगाहन करनेवालों को सुकृती कहा।

मन मुदित नहाहीं—भाव यह कि कवितासरित में प्रसन्न मन से सुकृती ही स्नान कर सकते हैं, अर्थात् आदर के सहित श्रवण कर सकते हैं, और उसे समझ सकते हैं, यथा—

सुनि समुझहिं जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।

जो सुकृती नहीं हैं उन्हें सरयू में जल बुद्धि ही होगी, उनके दिव्य प्रभाव को वे नहीं समझ सकेंगे। इसी भाँति इस कविता-सरित के भी दिव्य प्रभाव को वे नहीं समझ सकते, जो सुकृति नहीं है वे इसे साधारण काव्य ही समझेंगे, अतः श्रद्धापूर्वक कह सुन न सकेंगे।

राम तिलक हित मंगल साजा।
परव जोग जनु जुरे समाजा॥
काई कुमति केकई केरी।
परी जासु फल बिपति घनेरी॥४॥

अर्थ—श्रीरामजी के अभिषेक के लिये मंगल साज हुआ, वही मानो पर्व के आने पर भीड़ इकट्ठी हुई। वही कैकेयी की कुमति काई हुई, जिसके कारण बड़ी भारी विपत्ति पड़ी।

राम तिलक हित—राम के तिलक के लिये सभी को महा उत्साह है, यथा—

सबके उर अभिलाष अस, कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुवराज पदु, रामहिं देउ नरेसु॥

महाराज चक्रवर्तीजी को भी यही एक लालसा शेष है, यथा—

प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाही।
यह लालसा एक मन माहीं॥
पुनि न सोच तन रहहु कि जाऊ।
जेहि न होइ पाछे पछिताऊ॥

और कहाँ तक कहा जाय स्वयं भगवती कैकयी कहती हैं कि—

राम तिलकु जौ साँचेहुँ काली।
देउँ मागु मनभावत आली॥

मंगल साजा—यद्यपि महाराज ने ही रामजी को युवराजपद देने की इच्छा को एक दिन से अधिक पहले नहीं व्यक्त किया, तथापि वस्तुतः उसका साज समाज पन्द्रह दिन पहले से ही प्रारम्भ हो गया था, इसी बात को लक्ष्य करके मन्थरा कहती है कि—

भयउ पाखु दिन सजत समाजू।
तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥

महाराज चक्रवर्तीजी का, जो खास दरबार जिसमें देश देश के राजा उपस्थित हुए थे, पन्द्रह दिन पहिले ही हुआ था, उसी समय चक्रवर्तीजी के मन में श्रीरामजी को युवराजपद देने का संकल्प उठा, यथा—

एक समय सब सहित समाजा।
राज सभा रघुराज बिराजा॥

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे।
लोकप करहिं प्रीति रुख राखे॥
राउ सुभाय मुकुर कर लीन्हा।
बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा॥
श्रवन समीप भये सित केसा।
मनहु जरठपनु अस उपदेसा॥
नृप युवराज राम कहुँ देहू।
जीवन जनम लाहु किन लेहू॥

इसके बाद सुदिन सुअवसर पाकर महराजने गुरूजी से कहा, उनकी सम्मति पाकर, तब पञ्च की सम्मति ली। तत्पश्चात् दूसरे दिन तिलक देना निश्चय किया, अतः मन्थरा का कहना ठीक जँचता है। राजा-लोग पहिले से ही इकट्ठे थे, अभिषेक के सामग्री की देर थी, सो गुरुजी की आज्ञा से एक दिन में इकट्ठी हुईं इधर जब नगर वासियों को समाचार मिला तो—

सुनत राम अभिषेक सुहावा।
बाज गहागह अवध बधावा॥

रामराज अभिषेक सुनि, हिय हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब बधि अनुकूल विचारि॥
प्रमुदित पुर नरनारि सब, सजहि सुमंगल चार।
एक प्रविसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार॥

सो श्रीरामजी के तिलक के लिए मङ्गल साज इकट्ठा करने में कोई बात उठा नहीं रक्खो गई।

पर्व जोग—जिस भांति गोविन्द द्वादशी का पर्व लगने पर पन्द्रहियों पहिले से अयोध्या में सरयू स्नान के लिये भीड़ इकट्ठी होने लगती है, इसी भाँति रामयशरूपी सरयू में रामाभिषेकरूपी पर्व का जोग आ गया। अतः यहाँ भी भीड़ इकट्ठी हो गई। यद्यपि पर्व शब्द से किसी भी पर्व का ग्रहण हो सकता है, फिर भी श्रीरामाभिषेक पुण्य

के योग में ही होने वाला था, और गोविन्द द्वादशी भी पुष्ययोग में ही बहुत दिनों पर कभी आती है अतः वही ग्रन्थाकार की लक्षीभूता प्रतीत होती है।

जनु जुरेउ समाजा—श्रीरामचरित में रामाभिषेक अत्यन्त प्रधान है, इसकी महिमा भी अति अधिक है, अतः इसमें सम्मिलित होने के लिये देश-देश के राजा दल-बल के साथ ठहरे हुए हैं, इसीलिये इस भीड़भाड़ की उपमा गोविन्द द्वादशी की भीड़ से दी गई।

काई—जो जल मल, हराहरा, पानी में और उसके तट में इकट्ठा हो जाता है, उसी को काई कहते हैं। जहाँ काई लग जाती है, वहाँ बड़ी फिसलन हो जाती है। मानस में काई का वर्णन नहीं है, क्योंकि वहाँ आधिभौतिक अर्थ के साथ ही साथ आध्यात्मिक तथा आधिदैविक अर्थ भी चलते हैं, और उन अर्थों पर ध्यान देने से कैकेयी भगवती में कुमति का आरोप नहीं हो सकता, यथा—

तात कैकइहि दोष नहिं, गई गिरा मति धूति।

अतः मानस सर में काई नहीं कहा।

कुमति केकई केरी—महाराज अश्वपति की कन्या, भरतजी की माता। इनका मैका कैकय देश था, अतः कैकेयी कही जाती थीं। यह महाराज चक्रवर्ती की अत्यन्त प्यारी थीं। इन्होंने ही, मंथरा नामक चेरी के बहकावे में आकर अपने पुत्र भरतजी के लिये राज्य और रामजी के लिये चौदह वर्ष का बनवास, ये दो वर महाराज चक्रवर्तीजी से माँगा। यथा—

विपति बीजुवरषा रितु चेरी।
भुइँ भई कुमति केकई केरी॥
पाइ कपट थलु अंकुर जामा।
वर दोउ दल दुख फल परिनामा॥

इन्हीं के कारण रामजी को वनवास हुआ, जिससे संसार भर को दुःख हुआ, यथा—

राम गमनु बन अनरथ मूला।
जो सुनि सकल विश्व भइ सूला ॥

जिस भाँति काई से सभी नहाने वालों को कष्ट होता है, और विशेषतः पर्व के दिन, जब कि दूर से लोग नहाने के लिए आते हैं। और भारी भीड़ होती है, उस समय काई का दुष्परिणाम बड़ा भयङ्कर होता है, कितने लोग फिसल-फिसल कर गिरते हैं, चोट खाते हैं और मर भी जाते हैं। इसी भाँति इस अवसर में कैकेयी की कुमति का बड़ा घोर दुष्परिणाम हुआ, स्वयम् महाराज ही फिसल गये।

राज देन कहि दीन्ह बन।

और ऐसे फिसले कि उसी चोट में प्राण ही गया।

जासु फल—कुमति का फल ही विपत्ति है, यथा—

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना ॥
तव उर कुमति बसी विपरीता।
हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥

इनकी भी यही दशा हुई, हित पर अनहित और अनहित पर हित की भावना होने लगी, यथा—

सुरमाया वस बैरिनिहि, सुहृदजानि पतियानि।
विप्रवधू कुलमान्य जठेरी।
जे प्रिय परम कैकई केरी ॥
लगी देन सिख सीलु सराही।
बचन बान सम लागहिं ताही ॥
उतरु न देइ दुसह रिसि रूखी।
मृगिन्ह चितव जनु बाघिन भूखी ॥

ऐसी कुमति का वैसा ही फल हुआ जैसा सखियों ने कहा था।

बिपति घनेरी—अयोध्या में मानो वज्रघात हुआ। लक्ष्मण और सीता रामजी के साथ वन गए भरत ने भी राज्य स्वीकार न किया, चक्रवर्तीजी ने शरीर ही छोड़ दिया, यथा—

कौशल्या अब काह विगारा।
तुम जेहि लागि वज्र पुर पारा॥
सीयकि पिय संग प्ररिहरिहि, लखन कि रहिहहिं धाम।
राजकि भूजब भरत पुर, नृप कि जिइहि बिनु राम॥
विपुल वियोग प्रजा अकुलानी।
जनु जलचर गन सूखत पानी॥
सहि न सके रघुवर विरहागी।
चले लोग सब व्याकुल भागी॥
मुख सुखाहिं लोचन श्रवहि, शोकु न हृदय समाइ।
मनहु करूनरस कटकई उतरी अवध बजाइ॥
समन अमित उतपात सब, भरत चरित जप जाग
कलि अघखल अवगुन कथन, ते जल मल बकक्काग

अर्थ—सब असीम उत्पात के नाश के लिए भरतजी का चरित्र जप यज्ञ है, और कलि के पाप तथा खल के अवगुणों का कथन ही काई के लिए बकुले और कौए हैं।

समन अमित उतपात सब—श्रीराम लक्ष्मण जानकी के बन जानेपर श्रीचक्रवर्तीजी का देहान्त हुआ, प्रजा पूरी तरहसे अनाथ होगई। आज अयोध्या में चारों ओर अपशकुन हो रहा है, दिन को ही सुगाल रो रहे हैं। वन बाग नदी श्रीहत हो गए है, नगर विशेषरूप से भयावन होगया है, पशु पक्षी भी दुखी दिखाई पड़ रहे हैं। हाट बाट में मानो आग लगी है, लोग ऐसे विकल हैं, मानों डूबते हुए जहाज के यात्री हैं, यथा—

मनहु बारिनिधि बूड जहाजू।
भयउ विकल बड़ बनिक समाजू॥
असगुन होहिं नगर पैठारा।
रटहिं कुभांति कुखेत कराला॥
खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला।
सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥

श्रीहत सर सरिता बन बागा।
नगरु विशेष भयावनु लागा॥
खग मृग हयगय जाँहि न जोए।
राम बियोग कुरोग बिगोए॥
नगर नारि नर निपट दुखारी।
मनहु सबन्हि सब संपति हारी॥
हाट बाट नहि जाइ निहारी।
जनु पुर दहुँदिसि लागि दवारी॥

भरत चरित जप जाग—जिस भाँति उत्पात की शान्ति जप यज्ञ से होती है, उसी भाँति सब उतपातों की शान्ति भरत चरित से हुई। कैकेयी की कुमति रूपी काई ही सब बिपत्तियों की जड़ नहीं थीं। वह तो एक भौतिक निमित्त मात्र हुई। मूल कारण तो इस भौतिक निमित्त के ओट में दैवी गति थी, यथा—

विधि वाम को करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही वावरी।
सारद बोलिविनय सुर करहीं।
बारहिं बार पांय ले परहीं॥
विपति हमारि बिलोकि वडि मातु करिअ सोइ आजु।
राम जाहिं बन राज तजि होइ सकल सुर काज॥
बार बार गहि चरन सकोची।
चली बिचारि विविध मतपोची॥
नामु मंथरा मंद मति चेरी कैकै केरि।
अजस पिटारी ताहि करि गई गिरामति फेरि॥

स्वयम् रामजी कहते हैं 'तस उतपात तात विधि कीन्हा'। इस उत्पात के मिटाने के लिये भरत चरित्र जप यज्ञ हो गया। भरतजी ने ननिहाल से लौटकर पिता की क्रिया की। राज्याभिषेक का मुहूर्त देखकर गुरुजी सभा भवन में आये। सचिव महाजन बुलाये गए। मुनिजी पिता की आज्ञा मानने के लिये भरतजी को आदेश देते हैं, माता लोग भी

यही कहती हैं, मन्त्री लोग अनुमोदन करते हैं, पर भरत जी को राज्य स्वीकार नहीं है, कहते हैं।

आपनि दारुन दीनता कहउँ सबहिं सिरनाईं।
देखे बिनु रघुनाथ पद जिअकै जरनि न जाइ॥

एकहि आँक इहै मन माही।
प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाही॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी।
भै मोहि कारन सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी।
छमि सब करिहहि कृपा बिसेषी॥
जेहि सुनि विनय मोहि जनु जानी।
आवहि बहुरि रामु रजधानी॥

सभा मण्डप में गुरु जी बोल गये, मां लोग बोलीं मन्त्री बोले, पर प्रजावर्ग के लेखे कुछ हो ही नहीं रहा है, वे सो रहे थे। भरतजी की बात सुनते ही—

'भरत वचन सब कहँ प्रिय लागे।
मंत्र सबीज सुनत जनु जागे'॥
भरतहि कहहिं सराहि सराही।
राम प्रेम मूरति तनु आही।
भा सबके मन मोदु न थोरा।
जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥

कलि अघ खल अवगुन कथन—अर्थात् कलियुग का अघ, यथा—जुग कलिजुग मल मूल, और खल का अवगुन, यथा—

खल अघ अगुन साधु गुनगाहा।
उभय अपार उदधि अवगाहा॥

पहिले

सुकृति साधु नाम गुनगाना।
ते विचित्र जल विहंग समाना॥

कहकर, साधु आदि के गुनगान को पछी कह आये हैं, अतः वक्र काग के अघ अवगुन कथन के स्थान पर कलि के अघ अवगुन का कथन है, यथा—

जे जनमे कलिकाल कराला।
करतब वायस वेष मराला॥
चलत कुपंथ वेद मग छाड़े।
कपट कलेवर कलिमल भाँड़े॥

अथवा,—

सो कलिकाल कठिन उरगारी।
पाप परायन सब नर नारी॥

इत्यादि उत्तरकाण्ड के छंदों में कहा गया है।

इस कलियुग में 'तामस बहुत रजोगुण थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा॥' सत्त्व का कहीं पता नहीं। सो सत्य, कृत, द्वापर और कलियुग का जिस भाँति बड़ा भारी चक्र चल रहा है, उसी भाँति एक दिन में भी छोटा सा चक्र घूम जाता है, यथा—

नित जुग धर्म होहिं सब केरे।
हृदय राम माया के प्रेरे॥

अतः कलियुग की प्रेरणा से ही लोग कुकर्म कर बैठते हैं, इसी लिए कलियुग का अघ कहा।

इसी भाँति खल का अवगुण स्थान स्थान पर कहा गया है, यथा—

बहुरि बंदि खलगन सतभाएँ।
जे बिनु काज दाहिने बाएँ॥

इत्यादि तथा उत्तर काण्ड में —

कहउँ असंतन केर सुभाऊ।
भूलिहु संगति करिय न काऊ॥

इत्यादि 'विधि प्रपंच गुन अवगुन साना' है, यथा—

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती।
साधु असाधु सुजाति कुजाती॥

दुख में सुख सना है और सुख में दुख सना है, पुण्य में पाप सना है, और पाप में पुण्य सना है, इसी भाँति साधुता में भी असाधुता पाई जाती है और असाधुता में भी साधुता झलक उठती है, पर जितने अवगुण हैं, वे सब हैं खल के। पहिचान के लिये खल और साधु के गुण अवगुण पृथक् पृथक् कहे गये हैं,

यथा—

यहि ते कछु गुन दोष बखाने।
संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥

जलमल—काई है। इसका वर्णन सरोवर के रूपक में नहीं है, इससे पता चलता है कि मानस सरोवर में कवि ने काई नहीं माना। जब वही जल सरयू द्वारा देश में प्रचलित हुआ, तब देश के दोष से उस जल में काई भी पैदा हो गई। यह काई कुमति से उपमित है,

यथा—

काई कुमति कैकई केरी।
परी जासु फल विपति घनेरी॥

यहाँ जहाँ तहाँ कुमति का वर्णन आया है,

तथा—

कुमतिहि कस कुवेषता फावी।
अनअहिवात सूच जनु भावी॥

यथा—

तब उर कुमति बसी विपरीती।
हित अनहित जानै रिपु प्रीती॥

कुमति ही सम्पूर्ण पाप तथा खलता का मूल है। यथा—

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना॥

बक काग—काई के गाहक हैं, यहाँ 'कलिखल अघ अवगुन कथन' को बक काग कहा। मानसरोवर में काई ही नहीं थी संबुक भेक सेवार कहाँ से मिलें, अतः वहाँ बक काग का प्रवेश नहीं, यथा—

अति खल जे विषयी बक कागा।
एहि सर निकट न जाहि अभागा॥

पर यहाँ आते हैं, क्योंकि यहाँ उनके ग्रहण योग्य पदार्थ काई है।

परमेश्वरी सृष्टि में सब का उपयोग है। बक काग के कारण सफाई हुआ करती है। स्थल के मल को कूकर सूकर साफ किया करते हैं, और जल के मल को बक काग साफ करते हैं।

अर्थात् कलि अघ अवगुन कथन सप्रयोजन वस्तु है। कलियुग के अघों को जान कर, लोग पाप से बच कर पुण्य में रत होते हैं, यथा—

बुध युगधर्म जानि मन माहीं।
तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥

और खल के अवगुणों को जान कर लोग खल की संगति से बचते हैं, अतः इनके अघ अवगुण कथन की भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि मलीन जल अथवा काई वाले स्थान में बक काग की आवश्यकता है।

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी।
समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिमहिम सैल सुता सिव ब्याहू।
सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥ १॥

अर्थ—यह कीर्ति रूपिणी नदी छहों ऋतुओं में सुन्दर है, समय सुहावनी और परम पावनी है। शिव पार्वती का ब्याह हेमन्त ऋतु है, और प्रभु का जन्मोत्सव सुखदायी शिशिर है।

कीरति सरित—कविता सरित या कीर्ति सरित दो वस्तुएँ नहीं हैं। अतः चाहे कविता सरित में राम सुयश जल भरा हुआ है। अतः चाहे कविता सरित (सरयू) कहिये या कीर्ति सरित कहिये, बात एकही है, यथा—

चली सुभग कविता सरितासों।
राम विमल जस जल भरिता सों॥

श्री गोस्वामी जी नदी का रूपक यहीं समाप्त करते हैं। उन्होंने अयोध्या काण्ड तक ही मुख्य रामचरित माना। शङ्कर-पार्वती का ब्याह तथा आरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लङ्का और ५१ दोहे तक उत्तर काण्ड की कथाओं को उसी कीर्त्ति सरित की विशेष विशेष अवस्थाओं के शोभा रूप में स्वीकार किया है।

यही कारण है कि जिस भाँति बाल और अयोध्या विस्तार के साथ लिखे गये, उस भाँति दूसरे काण्ड नहीं लिखे गये। वस्तुतः श्रीरामजी के मुख्य गुणग्रामों का परिचय इन्हीं दो काण्डों में हो जाता है, शेष ग्रन्थ में उन्हीं गुणग्रामों की शोभा मात्र का वर्णन है।

छहूँ रितु रूरी—सब वस्तुएँ सब ऋतुओं में सुहावनी नहीं होतीं। सबके लिये काल नियत है। किसी की शोभा किसी ऋतु में होती है और किसी की किसी ऋतु में, पर इस कीर्ति सरित की शोभा कभी घटती नहीं। परिवर्तन तो होता है पर वह उसे नित्य नवनवायमान बनाए रखने में सहायक होता है। अतः परिवर्तन भी शोभा के उत्कर्ष का कारण है।

समय सुहावनि—जिस कथा-भाग को जिस ऋतु से उपमित किया गया है, उससे उस ऋतु की शोभा पाई जायगी। अतः कथा के किस भाग से किस ऋतु की शोभा है, इसे पाठकों के सुभीते के लिये स्वयम् ग्रन्थकार नीचे कहेंगे।

पावनभूरी—प्रत्येक ऋतु की कथाएँ केवल सोहावनी ही नहीं हैं, परम पवित्र भी हैं। इनके कहने से पाप नाश होकर सुख का उदय होता है—

(१) हिमऋतु की कथा की पावनता—

यह उमा संभु बिबाह जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज बिबाह मङ्गल सर्वदा सुख पावहीं॥

(२) शिशिर—

यह चरित जे गावहिं हरि-पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

(३) ऋतुराज—

सिय-रघुबीर-बिवाह जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिन कहँ सदा उछाह मंगलायतन रामजस ॥

(४) ग्रीष्म—

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ ।
बसहुँ लखनु सियराम बटाऊ ॥
रामु धामु पथ पाइहि सोई ।
जो पथु पाव कबहुँ मुनि कोई ॥

(५) वर्षा—

समर विजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान ।
बिजय बिबेक बिभूति नित तिनहिं देहि भगवान ॥

(६) शरत्—

सुनु खगपति यह कथा पावनी ।
त्रिविधताप भवभय दावनी ॥
महाराज कर सुभ अभिषेका ।
सुनत लहहिं नर बिरति बिबेका ॥
जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं ।
सुख संपति नाना बिधि पावहिं ॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं ।
अंतकाल रघुपति पुर जाहीं ॥
सुनहि बिमुक्त बिरत अरु बिषई ।
लहहिं भगति गति संपति नई ॥

हिमहिम सैलसुता शिव ब्याहू—हिम शैलसुता और शिव जी के ब्याह को हिम ऋतु माना है। अब यह देखना है शिव पार्वती का ब्याह राम चरित के अन्तर्गत कैसे है ?

पहिली बात तो यह है कि श्रीरामचरित का बीज शिव पार्वती के ब्याह प्रबन्ध में निहित है। श्रीरामजी के आरण्य-चरित को देखकर सती

का व्यामोह होना ही सतीत्याग का प्रधान कारण है और सती का ही जन्म पार्वती रूप में हुआ। पार्वती जी का शङ्कर भगवान् से व्याह होने से ही, उस व्यामोह की निवृत्ति के लिये श्रीरामचरित का प्रादुर्भाव हुआ। अतः हिम शैल सुताशिव-व्याह को रामचरित्र के अन्तर्गत मानना अनुचित नहीं है।

दूसरी बात यह है कि शिव पार्वती का व्याह वस्तुतः रामचरित ही है। शङ्कर भगवान् ने सती का परित्याग किया उन्होंने दक्षयज्ञ में जाकर शरीर छोड़ा और समय पाकर हिमगिरि के घर जन्म लिया, पर व्याह कैसे हो? शङ्कर भगवान् प्रतिज्ञा कर चुके हैं।

'सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं।
यहि तन सतिहि-भेट मोहिं नाहीं॥

अतः अब रामचरित सुनियेः—

नेमु प्रेम संकर कर देखा।
विचल हृदय भगति कै रेखा॥
प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला।
रूपसील निधि तेज बिसाला॥
बहु प्रकार संकरहिं सराहा।
तुम्ह बिनु अस ब्रत को निर्वाहा॥
बहुविधि राम सिवहिं समुझावा।
पारवती कर जन्म सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी।
' विस्तर सहित कृपा निधि वरनी॥

दोहा—

अब बिनती मम सुनहु सिव, जौं मोपर निजनेहु।
जाइविवाहहु सैलजहिं, यह मोहिं माँगे देहु॥

कह सिव जदपि उचित असनाहीं।
नाथ बचन पुनि मेटिन जाहीं॥

सिरधरि आयसु करिअ तुम्हारा।
परम धरम यह नाथ हमारा॥
मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी।
बिनहिं बिचार करिअ सुभजानी॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी।
आज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी॥
प्रभुतोषेउ सुनि शंकर वचना।
भक्ति विवेक धर्मयुत रचना॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ।
अब उर राखेउ जो हम कहेऊ॥
अंतरधान भए अस भाखी।
संकर सोइ मूरति उर राखी॥

श्रीरामजी के अनुरोध से यह ब्याह हुआ, अतः इसका श्रीराम-चरित्र के अन्तर्गत होना सभी विधि से प्राप्त है। अब रही यह बात कि हिमशैलसुता शिवब्याह में हिम ऋतु से कौन सा साधर्म्य है?

तो हिम ऋतु में दो महीने होते हैं:—(१) मार्गशीर्ष और (२) पौष इस भाँति हिम शैलसुता शिव ब्याह में भी दो चरित और शंभु चरित यथा—

(१) उमा चरित सुंदर मैं गावा।
(२) सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥

हिम ऋतु आते ही संसार कम्पायमान हो उठता है, जीवमात्र जाड़े से काँपने लगते हैं। कितना ही कपड़ा पहिनिये कितनी ही रजाई और दुशाला ओढ़िये, पर विना अग्नि के जाड़ा का नाश नहीं होता सो शङ्कर पार्वती के ब्याह के उपक्रम में ही जाड़ा और आग का सामना पड़ा। काम को जाड़े (हिम) से और शङ्कर भगवान् को अग्नि से स्वयम् हिमगिरिनन्दनी ने ही उपमित किया है, यथा—

तात अनल कर सहज सुभाऊ।
हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ॥

गए समीप सो अवसि नसाई।
अस मनमथ महेस कै नाई॥

हिम ऋतु कामियों को अति सुखद है, और नित्य कृत्य में महाविघ्नप्रद है, इस भाँति भी जाडा का काम से साधर्म्य मिलता है। कामरूपी जाड़ा का प्रकोप शङ्कर रूपी अग्नि पर हुआ, जिसका वर्णन करते हुए गोस्वामी जी कहते हैं।

तब आपन प्रभाव विस्तारा।
निज वस कीन्ह सकल संसारा॥
कोपेउ जबहिं वारिचरकेतू।
छनमहुँ मिटे सकल स्त्रुति सेतू॥
ब्रह्मचर्य व्रत संजम नाना।
धीरज धरम ज्ञान विज्ञाना॥
सदाचार जपजोग विरागा।
समय विवेक कटक सबुभागा॥

छन्द—

मागेउ विवेक सहाय सहित सो सुभट संजुग महिमुरे।
सदग्रंथ पर्वत कन्दरन्हि महँ जाइतेहि अवसरदुरे॥
होनिहार का करतार को रखवार जग खरभर परा।
दुइमाथकेहि रति नाथ जेहि कहँ कोपिकर धनुसरुधरा॥

दोहा—

जे सजीवजग अचरचर, नारिपुरुष असनाम।
ते निज निज मरजाद तजि भये सकल बस काम॥

सबके हृदय मदन अभिलाखा।
लता निहारि नवहि तरुसाखा॥
नदी उमगि अंबुधि कहुँ धाई।
संगम करहि तलाव तलाई॥
जहँ असि दसा जड़न्ह कै वरनी।
को कहि सकहिं सचेतन करनी॥

पसुपच्छी नभजलथलचारी ।
भए काम बस समय बिसारी ॥
मदन अंध व्याकुल सब लोका ।
निस दिन नहिं अवलोकहिं कोका ॥
देव दनुज नर किन्नर व्याला ।
प्रेत पिशाच भूत वैताला ॥
इन्हकै दसा नकहेउ बखानी ।
सदा काम के चेरै जानी ॥
सिद्ध विरक्त महा मुनि जोगी ।
तेपि काम बस भए वियोगी ॥

छंद—

भए काम बस जोगीसतापस पामरनि की को कहै ।
देखहिं चराचर नारि मय जे ब्रह्म मय देखत रहे ॥
अवला विलोकहिं पुरुष मय जग पुरुष सब अवलामयं ।
दुइ दण्ड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अयं ॥

दोहा—

धरी न काहूँ धीर सबके मन मनसिज हरे ।
जेहि राखे रघुवीर ते उबरे तेहि काल महुँ ॥

जाड़ा रूपी काम का यह पुरुषार्थ त्रैलोक्य के कम्पायमान करने में समर्थ तो हुआ, परन्तु कालाग्नि के समान रुद्र भगवान् के देखते ही सङ्कुचित हो गया, यथा—

सिवहिं विलोकि ससकेउ मारू ।
भयेउ जथा थिति सब संसारू ॥
रुद्रहिं देखि मदन भय माना ।
दुराधरष दुर्गम भगवाना ॥
तब सिव तीसर नयन उघारा ।
चितवत कामु भयेउ जरि छारा ॥

यह तो हुई मार्गशीर्ष की बात, पौष में तो अग्निदेव भी मन्दे पड़ गये, कारण यह कि भगवती हिमगिरिनन्दिनी के साथ व्याह हो गया। अब तो—

जगत मातु पितु संभु भवानी।
तेहि सिंगारु न कहहुँ बखानी॥
करहिं विविध विधि भोग विलासा।
गनन्ह समेत बसहिं कैलासा॥
हर गिरजा विहार नित नयऊ।
एहि विधि बिपुल काल चलि गयऊ॥
तब जनमेउ षटबदन कुमारा।
तारक असुर समर जेहि मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना।
षन्मुख जन्मु सकल जग जाना॥

इस हिमऋतु की महिमा भी बहुत बड़ी है। श्री गोस्वामी जी कहते हैं—

यह उमासंभु विवाह जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।
कल्यान काज विवाह मङ्गल सर्वदा सुख पावहीं॥

सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू—माघ और फाल्गुन ये ही दो महीने शिशिर ऋतु कहलाते हैं। इनकी उपमा प्रभु जन्म उछाह से श्री गोस्वामी जी ने दी है। अतः प्रभु जन्म हुआ माघ और उछाह फाल्गुन। अब थोड़ा सा उछाह वर्णन सुनिये, और राम कथा में होली का आनन्द लीजिये। श्री गोस्वामी जी कहते हैं—

त्रिविध ताप होली जलै खेलिय अस फाग। (विनय पत्रिका)

सो त्रिविधि ताप की होली तो प्रभु के जन्म लेते ही जल गई यथा—

हरषित जहँ तहँ धाईं दासी।
आनंद मगन सकल पुरबासी॥

दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना।
मानहुँ ब्रह्मानंद समाना॥
परमानंद पूरि मन राजा।
कहा बुलाइ बजावहु बाजा॥

नगर में आनंद मच गया, तैयारियाँ होने लगीं, देवताओं ने भी हाथ बटाया—

ध्वज पताक तोरन पुर छावा।
कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा॥
सुमन वृष्टि आकास तें होई।
ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥
वृन्द वृन्द मिलि चलीं लोगाईं।
सहज सिंगार किये उठि धाईं॥

अब लोगों का हाल सुनिये—

लै लै ढोर प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार।
करहिं गान करि आन राय की नाचहिं राज दुआर॥
गज रथ बाजि बाहिनी वाहन सबन सँवारे साज।
जनु रतिपति रितुपति कोसलपुर बिहरत सहित समाज॥
घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ वेनु डफतार।
नूपुरधुनि मंजीर मनोहर कल कंकन झनकार॥
नृत्य करहिं नट नटी नारि नर अपने अपने रंग।
मनहु मदन रति विविध वेष धरि नटत सुवेस सुढंग॥
उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान।
सुनिकिन्नर गंधर्व सराहत बिथिके हैं विबुध विमान॥
कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर।
नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भई मनभावनि भीर॥

(गी०)

सूखे और गीले दोनों प्रकार के रंगों की ऐसी भरमार हुई कि गलियों में कीच मच गई, यथा—

मृगमद चंदन कुंकुम कीचा।
मची सकल बीथिन्ह बिचबीचा॥

जिस भाँति होली की उमङ्ग में बहुत सी अनुचित बातें भी उचित सी मान ली जाती हैं, इसी भाँति छोटी मोटी चोरी भी हास परिहास-में ही परिगणित होती है। लड़के उछाह भरे स्वाँग बनाये फिरते हैं। यहाँ बड़े बूढ़ों की चोरी देखिये—

औरउ एक कहउँ निजचोरी।
सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
कागभुसुंडि संग हम दोऊ।
मनुज रूप जानइ नहिं कोऊ॥
परमानंद प्रेम सुख फूले।
बीथिन फिरहिं मगनमन भूले॥

अब होली ही हो रही है, तो थोड़ी गाली भी सुनिये। बिना गाली के होली मातम मालूम होती है। जब क्रोध की गाली सभ्यसमाज में भी तीन सौ साठ दिन बराबर चला करती है, तो प्रेम की गाली एक दिन के लिये यदि हर्षोत्पादक न हो तो क्षम्य अवश्य हो है। श्रीगोस्वामी जी कहते हैं।

अमिअ गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार।
प्रेम वैर की जननि जुग, जानहिं बुध न गँवार॥
[दोहावली]

इस महोत्सव में सभी सम्मिलित हुए। प्रजाओं की तो भीड़ उमड़ पड़ी, देवताओं ने फूलों की झड़ी बाँध दी, शङ्कर भगवान् स्वयम् भुशुण्डिजी के साथ मनुष्य का स्वाँग बनाये फिरते थे। ऐसे आनन्द के समय यदि अभिसारिका भी अपने प्रियतम से होली की कसक मिटाने चले, तो इसमें आश्चर्य्य क्या है? तो रात्रिदेवी अभिसारिका होकर अपने प्रियतम प्राणधन प्रभु से मिलने चलीं। समय मध्याह्न का था। ऐसे समय में रात्रिदेवी ने कभी चौखट से बाहर पाँव नहीं निकाले थे।

वे जानती भी न थीं कि मध्यान्ह किस बला का नाम है, पर बाधाओं का सामना कर बैठना अभिसारिकाओं के हिस्से की बात है। रात्रिदेवी भी अभिसारिकोचित साहस करके निकल पड़ीं, पर देखती क्या हैं कि सूर्य्यदेव बड़े ठाट-बाट से रथ रोके खड़े हैं। रात्रि ने कभी सूर्य्यनारायण को देखा न था, अपरिचित बड़े बूढ़े को देख कर संकुचित हो गई। सङ्कोच से वे सन्ध्यारूपिणी हो गईं, जैसे—

अवध पुरी सोहइ एहि भाँती।
प्रभुहिं मिलन आई जनु राती॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी!
तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी॥

अब सन्ध्या का रूपक देते हैं, सन्ध्या के समय अँधेरी रात्रि आ जाती है और सूर्य्य के कारण लाली भी रहती है। उस अँधेरी और लालिमा का अद्भुत दृश्य होता है, अति पटु चित्रकार ही उसे चित्रपट पर अंकित कर सकता है। यहाँ जलते हुए धूप के धूएँ की अँधेरी है और उड़ती हुई अबीर की लालिमा है। सो मानो रात्रिदेवी स्तब्ध होकर सन्ध्या के रूप में खड़ी रह गईं—

अगर धूप बहु जनु अँधियारी।
उड़इ अबीर मनहुँ अरुनारी॥

पूर्णिमा होने से अभी सूर्य्यदेव अन्धकार में पूरी तरह विलीन नहीं हुए थे। इधर पूर्व से निशानाथ भी अपनी ताराओं की सेना साथ लिए आते हुए दिखाई पड़े। अब बेचारी अभिसारिका कहाँ जाय! पीछे लालभभूका हुए रजनीकान्त और सामने राग-रञ्जित वदन बूढ़े दिनमणि—

मन्दिर मनि समूह जनु तारा।
नृप गृह कलस सो इंदु उदारा॥

चिड़ियों को भी धोखा हो गया कि सचमुच सन्ध्या ही हो गयी! अतः वे भी चहचहाने लगीं—

भवन वेद धुनि अति मृदुबानी ।
जनु खग मुखर समय जनु सानी ॥

बूढ़े सूर्य्यदेव ने भी निशा सुन्दरी का और उसके शृङ्गार का बड़ा वर्णन सुन रक्खा था। कभी देखने की नौबत नहीं आई थी।

बिथुरे नभ मुकुताहल तारा।
निशि सुंदरी केर सिंगारा ॥

आज निशा सुन्दरी को देख पाया, सो ऐसे मुग्ध हो गये कि अपने को ही भूल गये।

कौतुक देखि पतंग भुलाना।
मास दिवस तेहि जात न जाना ॥

एक महीने देखते ही रह गये और रात्रि देवी सन्ध्या बनी ही रह गई। किसी भाँति वे बूढ़े बाबा हटें, तो रात्रि देवी भी सन्ध्यारूपी घूँघट खोल कर अपने प्रियतम प्राणधन से मिलें, पर ये हटते ही नहीं।

मासदिवस कर दिवस भा, मरम न जानइ कोइ।
रथसमेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होइ ॥

होली की धुन में मस्त लोगों को क्या पता कि आकाश में क्या हो रहा है! यहाँ एक महीने का दिन हो गया, उन्हें आनन्दातिशय में क्षण प्रतीत हो रहा है।

ब्योम पवन पावक जल थल दसदिसहु सुमङ्गल मूल।
सुर दुंदुभी बजावहिं गावहिं हरखहिं बरखहिं फूल ॥
(गी०)

इस भाँति प्रभु-जन्म-उछाह की उपमा शिशिर ऋतु से दी गई। इस भाव को मन में ले कर कथा में प्रवेश करने से पूरा आनन्द आवेगा।

बरनब राम बिबाह समाजू।
सो मुदमङ्गलमय रितुराजू ॥
ग्रीषम दुसह राम बनगमनू।
पंथ कथा खर आतप पवनू ॥ २ ॥

अर्थ—रामजी के विवाह के समाज का जो मैं वर्णन करूँगा, वही मुदमङ्गल मय वसन्त है। रामजीका बनगमन ही नहीं-सहने योग्य ग्रीष्म-ऋतु है और रास्ते की कथा ही कठिन लू (धूप की वायु) है।

बरनब राम विवाह समाजू।
सो मुद मङ्गलमय रितु राजू॥

ऋतुओं का राजा वसन्त है, क्योंकि इसका ठाटबाट राजा सा होता है। इसी ऋतु से नवीन वर्ष का आरम्भ होता है, अन्न इसी ऋतु में पकता है, फूल फूलते हैं वायु सुगन्धित हो जाती है, प्रकृति में नई बान आ जाती है। संसार में आमोद प्रमोद हो जाता है। इसकी उपमा रामविवाह समाज से दी गई है।

रामविवाह समाज में दोनों समधियों अर्थात् महाराजदशरथ और जनक की प्रधानता है। श्री गोस्वामीजी इन्हें मधु-माधव कहते हैं। वसन्तऋतु के चैत्र और वैशाख दोनों महीनों के वेदानु-मोदित नाम मधु और माधव हैं।

मधुमाधव दसरथजनक मिलब राज रितु राज।

[शकुनावली]

सो इन दोनों राजाओं का समाज ही ऋतुराज है। ऋतुराज, वसन्त और कुसुमाकर पर्यायवाची शब्द हैं-काम के सखित्व से वसन्त ऋतु को ऋतुराज की पदवी मिली है और फूलों की बहुतायत से यह कुसुमाकर कहलाता है।

अयोध्या से बारात बड़े ठाटबाट से जनकपुर आई और जनकपुर में बड़ी तैयारी के साथ उसका स्वागत हुआ। दोनो ओर के डेरा खेमा, हाथी घोड़े, रथ पैदल, गाजा बाजा से चहल पहल मच गई, मानों वनउपवन में साक्षात् ऋतुराज की अवाई हो गई, यथा—

विटप विसाल लता अरुझानी।
विविध वितान दिये जनु तानी॥
कदलि ताल वर ध्वजा पताका।
देखि न मोह धीर मन जाका॥

विविध भाँति फूले तरु नाना।
जनु बानैत सजे बहु बाना।।
कहुँ कहुँ सुन्दर विटप सुहाए।
जनु भट विलग विलग होइ छाए।।
कूजत पिक मानहुँ गजमाते।
ढेक महोख ऊंट बिसराते।।
मोर चकोर कीर वर बाजी।
पारावत मराल सब ताजी।।
तीतर लावक पदचर जूथा।
बरनि न जाइ मनोज बरूथा।।
रथगिरि सिला दुंदुभी झरना।
चातक बन्दी गुनगन बरना।।
मधुकर मुखर भेरि सहनाई।
त्रिविध बयारि बसीठी आई।।
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हे।
विचरत सबहिं चुनौती दीन्हें।।

उपर्य्युक्त चौपाइयों में वसन्त की अवाई की उपमा चतुरङ्गिनी सेना से दी गई है, पर यहाँ दोनों ओर की चतुरङ्गिनी सेना की उपमा वसन्त की अवाई से है। वसन्तोत्सव में नगरों में बड़ी तैयारी होती है, प्रजावर्ग महोत्सव मनाते हैं। अयोध्या और जनकपुर में भी बड़ी तैयारी है, और प्रजावर्ग आनन्द में विभोर हैं। अवधपुरी की तैय्यारी, यथा—

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि।
रामपुरी मङ्गलमय पावनि।।
तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई।
मङ्गल रचना रची बनाई।।
ध्वजपताक पट चामर चारू।
छावा परम विचित्र बजारू।।

कनक कलस तोरन मनि जाला ।
हरद दूब दधि अच्छत माला ॥
मङ्गलमय निज निज भवन, लोगन्ह रचे बनाइ ।
वीथी सींची चतुरसम चौके चारु पुराइ ॥

जनकपुर की तैयारी, यथा—

रचे रुचिर बर बंदन वारे ।
मनहुं मनोभव फंद संवारे ॥
मङ्गल कलस अनेक बनाए ।
ध्वजपताक पट चँवर सुहाए ॥
दीप मनोहर मनिमय नाना ।
जाइ न बरनि बिचित्र बिताना ॥
जेहिं मंडप दुलहिन बैदेही ।
सो बरनै असि मति कवि केही ॥
दूलहु रामु रूपगुन सागर ।
सो वितान तिहुँ लोक उजागर ॥
जनक भवन कै सोभा जैसी ।
गृहगृह प्रति पुर देखिय तैसी ॥
जेहि तिरहुत तेहि समय निहारी ।
तेहि लघु लाग भुवन दस चारी ॥ इत्यादि

फिर भी इतने से ही वसन्त का वर्णन पूरा नहीं होता, इसमें कामदेव द्वारा दिग्विजय होना चाहिये । सो भी देख लीजिये । सारे संसार में शरदऋतु आ गई है, पर महाराज के बाग में अभी वसन्त ही है, यथा—

भूप बाग बर देखेउ जाई ।
जहँ वसन्त ऋतु रही लोभाई ॥

सरकार फूल तोड़ने गये, जनक नन्दिनी गिरिजा पूजन के लिये गईं । सो सखी मुख से सरकार की अलौकिक शोभा सुनकर दर्शन के लिये आ रही हैं ।

कामदेव ने देखा कि ऐसा सुअवसर फिर न मिलेगा। मर्यादा पुरुषोत्तम के विजय से ही विश्वविजय है। सो उसने विजय डंका बजा ही तो दिया। इधर सरकार खाली हाथ हैं, 'सुमन समेत वाम कर दोना' हैं। डंके का शब्द सुनते ही चौंक उठते हैं, और लक्ष्मणजी से कहते हैं :—

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।
कहत लखन सन राम हृदयगुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही॥

अभी दोनों भाई सलाह कर ही रहे हैं, उधर बाणों की वर्षा शुरू हो गई, यथा—

जहँ विलोकि मृग सावक नयनी।
जनु तहँ बरस कमल सित श्रेनी॥

अब क्या किया जाय ? कल जब जनकपुर देखने गये थे तब धनुष हाथ में था। इसलिये काम को जीत लिया था। जनकपुर की युवतियों ने कह दिया कि 'सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती' पर आज तो खाली हाथ हैं। इस बाणवर्षा का सामना कैसे करें ? तो लज्जा की ओट पकड़ ली। पर सखियाँ वैरिन हो गईं, कल की कसर निकालना चाहती हैं। लता ओट तब सखिन लखाये। अब कहाँ बचकर जायँ ? अन्त में बन्दी होना पड़ा यथा—

लोचन मग रामहिं उर आनी।
दीन्हें पलक कपाट सयानी॥

सो वसन्त ऋतु में कामदेव का विश्वविजय पूरा हुआ। इधर ललनाओं ने ऐसी फूलों की झरी लगा रखी थी कि कुसुमाकर नाम सार्थक हो गया, यथा—

हिय हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनिवृन्द।
जाहिं जहाँ जहँ बन्धु दोउ तहँ तहँ परमानन्द॥

अब वसन्तऋतु के त्यौहारों की झलक राम-विवाह समाज में देख लीजिये। पहिले तो नव रात्र ही आता है घर घर दुर्गापूजा होती है, सो यहाँ साक्षात् जनकनन्दनी गा-बजा कर पूजा कर रही हैं, यथा—

तेहि अवसर सीता तहं आईं।
गिरिजा पूजन जननि पठाईं॥
संग सखी सब सुभग सयानी।
गावहिं गीत मनोहर बानी।
सर समीप गिरजा गृह सोहा।
बरनि न जाइ देखि मन मोहा॥
मज्जन करि सर सखिन्ह समेता।
गईं मुदितमन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा।
निज अनुरूप सुभग वर मागा॥

चण्डी स्तव सुनिये—

जयजय गिरिवर राज किसोरी।
जय महेस मुख चन्द्र चकोरी॥
जय गजबदन षड़ानन माता।
जगत जननि दामिनि दुतिगाता॥
नहिं तब आदि अंत अवसाना।
अमित प्रभाव बेद नहिं जाना॥
भवभव विभव पराभव कारिनि।
विश्वविमोहनि स्ववसविहारिनि॥
पति देवता सुतीय महँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न कहि सकहिं, सहस सारदा शेख॥
सेवत तोहिं सुलभ फल चारी।
वरदायिनी त्रिपुरारि पियारी॥
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे।
सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥

मोर मनोरथ जानहु नीके।
बसहु सदा उर पुर सबही के॥

नृसिंहजयन्ती का आभास तो प्रारम्भ में ही दे दिया, यथा।

सो० पुरुषसिंह दोउ वीर, हरषि चले मुनिभय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर, अखिल विश्व कारन करन॥

धनुषयज्ञ में परशुरामजी के प्रकट होने से परशुराम जयन्ती भी झलकाई, यथा—

तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा।
आये भृगुकुल कमल पतंगा॥

जन्हु ऋषि द्वारा गङ्गाजी का प्रकट होना इसी ऋतु में माना जाता है, अतः

गाधि सुवन सब कथा सुनाई।
जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥

सृष्टि का प्रारम्भ भी इसी ऋतु में कहा जाता है, फलतः वर्ष का आरम्भ भी इसी में होता है, सो प्रकृति पुरुष का सम्मेलन वर्णन करना समयोचित है। रामविवाह समाज कथा में उसी प्रकृत पुरुष सम्मेलन का सविस्तार वर्णन है।

दहराकाशरूपी जनकराजरत्न मण्डप में ब्रह्म, प्राज्ञ, तैजस और विश्व क्रमशः अपनी अपनी अवस्था तुरीया, सुषुप्ति स्वप्न और जाग्रत् के साथ विराजमान हुए। यही सृष्टि का प्रारम्भ है, यही वसन्त महोत्सव है। यथा—

सुन्दरी सुन्दर वरन्ह सह सब एक मण्डप राजहीं।
जनु जीव उर चरिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं॥

ग्रीषम दुसह रामवन गवनू।
पंथ कथा खर आतप पवनू॥

श्रीरामावतार का प्रारम्भ गोस्वामीजी ने भी शिशिर से किया, यथा—

सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू।
बर तव रामविवाह समाजू॥
सो मुद मंगलमय रितु राजू।

अब विवाह भी हो गया सरकार को भगवती जनकनन्दनी के साथ अवध में रहते बारह बरस बीत गये, और 'सबबिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचन्द्र मुखचन्द्रनिहारी।' लोग सब सुखी हैं। परिवर्तनशील संसार में सदा सब प्रकार कोई सुखी रह नहीं सकता। ऋतुराज का अधिकार सदा के लिये हो नहीं सकता। ग्रीष्म आ गया। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—

'राजभवन सुख बिलसत सिय संग राम।
विपिन चले तजि राज सुविधि बड वाम॥

कैसे वनवास हुआ ? क्या हुआ ? यह तो बड़ी भारी कथा है, और सभी इससे सुपरिचित हैं। पर मुझे तो इस रूपक की व्याख्या करनी है रामचरित में रामबनगमन ग्रीष्म ऋतु है, अब ग्रीष्म वर्णन को रामबन-गमन से मिलाइये। ग्रीष्म के प्रधान कारण भगवान् अंशुमाली हैं, सो यहाँ 'नारि कुमुदिनी अवध सर रघुपति विरह दिनेस'।

सरकार के विरह-दिनेश के उदय से संसार संतप्त हो उठा, महर्षि-भारद्वाज कहते हैं।

रामगमन बन अनरथ मूला।
जो सुनि सकल विश्व भइ सूला॥

सूर्य्य का प्रखर प्रताप न सह कर समर्थ लोग देश के बाहर भाग रहे हैं, यथा—

सहि न सके रघुवर विरहागी।
चले लोग सब व्याकुल भागी॥

नगर का हाल देखिये।

हाटबाट नहिं जाइ निहारी।
जनुपुर दहदिसि लागि दवारी॥

बागन्ह विटप बेलि कुमिलाहीं।
सरित सरोवर देखि न जाहीं॥
खग मृग हय गय जाहिं न जोए।
राम वियोग कुरोग विगोए॥
नगर नारिनर निपट दुखारी।
मनहु सबन्हि सब संपति हारी॥

प्रिय परिजन तो मछली ठहरे ग्रीष्म में जल के घटने से इनकी विकलता तो कही ही नहीं जा सकती। माता कौशल्या कहती हैं—

अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना।
तुम्ह करुना कर धरम धुरीना॥
अस विचारि सोइ करेहु उपाई।
सबहिं जियत जेहि भेटेहु आई॥

सो बात पुरी न हुई।

मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना।
मम जीवन तिमि तुमहि अधीना॥

ऐसा वरदान माँगने वाले सत्य-सन्ध महाराज दशरथ ने, अल्प जल में पड़े हुए मत्सराज की भाँति अपने शरीर का ही विसर्जन कर दिया—

बंदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि रामपद।
बिछुरत दीनदयाल प्रियतन तृनइव परिहरेउ।

अब थोड़ा सा लू का भी हाल सुनिये, पंथकथा खर आतप पवनू।

पुरतें निकसी रघुबीर बधू धरि धीर धरी मगमे डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की पुट सूखि गए मधुराधर द्वै॥
पुनि पूछति है चलनो व कितो पियपर्नकुटी करिहौ कित ह्वै।
तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारुचलींजल च्वै॥

इतने में सुमंत जी रथ लिये आ पहुँचे और 'करि विनती रथ राम चढ़ाये' वहाँ से रथ पर चले शृंगवेरपुर में निषाद से मिले, उसे भी लू लगी।

ग्राम बास नहिं उचितमुनि गुहहिं भयउ दुखभार ।

और वह दुख और भी बढ़ गया, जब राम सीता को उसने भूमि पर सोते देखा, यथा—

भयउ विषाद निषादहिं भारी ।
रामसीय महिं सयन निहारी ॥

गङ्गापार होने पर तो फिर पैदल चलना पड़ा यमुना पार होने पर निषादराज भी बिदा हो गये अब जो इन तीनों मूर्तियों को पैदल जाते देखता है, कोई पहुँचाने को तैयार हो जाता है—

अगम पंथ गिरिकानन भारी ।
तेहि महँ नाथ नारि सुकुमारी ॥
जाव जहाँ लगि तहँ पहुँचाई ।
फिरब बहोरि तुमहिं सिर नाई ॥

किसी को ज्योतिषशास्त्र झूठा प्रतीत होने लगता है । कहने लगते हैं—

मारग चलहु पयादेहि पाए ।
ज्योतिष झूठ हमारेहि भाएँ ॥

कोई राजारानी को दोष लगाता है, कोई ब्रह्मदेव को कोसता है ।

एक कलस भरि आनहिं पानी ।
अंचइअ नाथ कहहिं मृदुबानी ॥

इस भाँति रास्ते भर दर्शकों की यही दशा है । जिसने पैदल जाते देखा वही विकल हो गया । जो जितना ही मृदु था, उसे लू ने उतना ही अधिक कष्ट दिया । भगवद्भक्तशिरोमणि भगवान् मारुति कहते हैं—

कठिन भूमि कोमलपदगामी ।
कवन हेतु बन बिचरहु स्वामी ॥
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता ।
सहत बिपिन हिम आतप बाता ॥

और वहीं से लू बन्द हुई। फिर भगवान् मारुति ने पैदल नहीं चलने दिया—

लिये दोउ जन पीठ चढ़ाई।

पंथ कथा से तीन काण्ड भरे हुए हैं, संक्षेप में भी कहना कठिन है, प्रादेशमात्र दिखला दिया गया है।

असह्य होने से ही किसी कवि ने ग्रीष्म का वर्णन विस्तार से नहीं किया, पर 'विधि प्रपंच गुन अवगुन साना' है। जहाँ बहुत से दोष हैं, वहाँ एक गुण भी रहता है। ग्रीष्म में ही पहिला पानी पड़ता है, जिसे दवँगरा कहते हैं। यहीं से वर्षा का प्रारम्भ कहना चाहिये। निशिचरों से वैर ही रामचरित का पावस कहा गया है, यथा—'वर्षा घोर निसाचर रारी। सुरकुलसालि सुमङ्गलकारी' सो यहाँ खरदूषण संग्राम ही दवँगरा है।

आँधी के साथ पानी आया—

धूरि पूरि नभ मंडल रहा।
राम बोलाइ अनुज सन कहा॥
लै जानकिहिं जाहु गिरि कंदर।
आवा निसिचर कटक भयंकर॥

वर्षा भी खूब हुई—

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहिं बारहीं। करि कोप श्रीरघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥

पहिली ही वर्षा बेहन पढ़ने योग्य हुई, सुरकुलशालिसुमङ्गल-कारिणी हुई। यथा—

हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान। अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान।

गुरुपूर्णिमा को द्योतित करते हुये जगद्गुरु शंकर का स्थापन कहते हैं, 'लिङ्ग थापि बिधिवत करि पूजा' इत्यादि।

बरषा घोर निसाचर रारी।
सुर कुल सालि सुमंगल कारी॥

राम राज सुख बिनय बड़ाई।
बिसद सुखद सोइ सरद सोहाई॥

अर्थ—निशाचरों से बड़ी भारी रारि (दुश्मनी) ही घोर वर्षा है। यह देवकुलरूपी धान के लिये सुन्दर सुमङ्गलकारी है। रामराज्य का जो सुख, विनय और बड़ाई है, वही निर्मल, सुख और सुन्दर शरद ऋतु है।

बरषा घोर निसाचर रारी।
सुरकुलसालि सुमङ्गल कारी॥

पूज्यपाद श्रीगोस्वामीजी ने श्रीरामचरितमानस के 'निसाचर रारी' प्रसङ्ग को वर्षाऋतु माना है। यद्यपि वर्षा का आरम्भ ग्रीष्म ऋतु के मध्य अर्थात् आषाढ़ से ही हो जाता है, तथापि वर्षा ऋतु में गणना श्रावण और भाद्रपद की ही है।

इसी भाँति खरदूषणवध तथा अशोकवाटिकासंहार में निशाचर-रारि रूपी वर्षा दो बार हुई। पर वह आषाढ़ की वर्षा थी, सावन-भादों की नहीं। इसी लिये कवि ने 'वर्षा घोर निसाचर रारी' कहा है। संक्षेपतः लङ्काकाण्ड का युद्ध ही श्रावण-भाद्रपद की वर्षा है।

मैं यह नहीं कहता कि मेरे वाक्य आर्षवाक्य की भाँति प्रमाण मान लिये जाँय, बल्कि यह प्रार्थना है कि श्री रामचरितमानस खोल कर मिलान कर लिया जाय। ७ दोहों में चारों फाटकों की लड़ाई है, ७ दोहों में कुम्भकर्ण लड़ा है और मेघनाद की तीन लड़ाइयाँ ८ दोहों में कही गई हैं। अतः ७+७+८=२२ दोहे हुए, और २२ दोहों में केवल रामरावणयुद्ध हुआ; इसी गणना के आधार पर मैंने सावन-भादों का विभाग किया है।

पहली घटा सावन की उठी। लङ्काके शहर-पनाह के बुर्जों पर निशाचरी सेना आ डटी। सोने के बुर्जों पर काले-काले निशाचरों की कैसी शोभा हुई, इसका वर्णन करते हुये गोस्वामी जी कहते हैं—

कोट कंगूरन्हि सोहहिं कैसे।
मेरु के सृंगन्हि जनु घन बैसे॥

अब लड़ाई प्रारम्भ होती है—

ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पविपात जनु गर्जत प्रलय के बदाले॥

तोपों का दगना और वीरों का सिंहनाद ही बादलों का गर्जन है। यथा—

पवन तनय मन भा अति क्रोधा।
गर्जेउ प्रबल कालसम जोधा॥
मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास॥ इत्यादि

इस भाँति लड़ाइयाँ होती रहीं। रक्त से रणाङ्गण के खाईं—खन्दक सब भर गये।

भरेउ गाड़ भरि भरि रुधिर ऊपर धूरि उड़ाय।
जनु अंगाररासिन्ह पर मृतकधूम रह छाय॥

श्रावण समाप्त होते न होते मघा लग गया। श्री गोस्वामी जी कहते हैं—

सक्ति सूल तलवारि कृपाना।
अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना॥
डारइ परसु परिघ पाषाना।
लागेउ वृष्टि करै बहु बाना॥
दस दिसि रहे बात नभ छाई।
मानहुँ मघा मेघ झरि लाई॥

मघा की उपमा मघा के समय में ही दी गई। आगे चलकर भी बाणवर्षा बहुत है, पर मघा से उपमा नहीं दी गई। मेघनादवध के साथ श्रावण समाप्त हो जाता है, रक्षा पूर्णिमा हो जाती है। जब तक मेघनाद के वध के साथ ही लङ्का जेय हो गई, फलतः देवताओं की रक्षा हुई।

जय अनन्त जय जगदाधारा।
तुम प्रभु सब देवन्ह निस्तारा॥

यही रक्षा पूर्णिमा है। भाद्रपद में रामरावण संग्राम है। शास्त्रों में भाद्रकृष्ण चतुर्दशी के दिन की नदी के बाढ़ को प्रमाण माना है, अतः यहाँ भादों में ही शोणित नदी की बाढ़ कही है। इसी स्थल पर वर्षा का पूरा रूपक कहा है। घटा आई, बिजली चमकी, बादल गर्जा, इन्द्रधनु उगा, वृष्टि हुई, वज्रपात हुआ, झड़ी बँध गई, पर्वतों से झरने बहे और सब मिलकर नदी हो गये, यथा—

देखि चले सनमुख कपि भट्टा।
प्रलयकाल के जनु घनघट्टा॥
बहु कृपान तरवारि चमक्कहिं।
जनु दस दिसि दामिनि दमक्कहिं॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा।
गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥
कपि लंगूर विपुल नभ छाए।
मनहुँ इन्द्रधनु उए सुहाए॥
उठइ धूरि मानहुँ जलधारा।
बानबुन्दि भई वृष्टि अपारा॥
दुहुँ दिसि पर्वत करहिं प्रहारा।
वज्रपात जनु बारहिंबारा॥
रघुपति कोपि बानझरि लाई।
घायल भै निसिचर समुदाई॥
स्रवहिं सयल जनु निर्झर भारी।
सोनितसरि कादरभयकारी॥

कादर भयंकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त्त बहति भयावनी॥
जलजन्तु गज पदचर तुरग खर विविध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥
वीर परहिं जनु तीरतरु मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि डराहिं तहँ सुभटन मैं मन चेन॥

इतना ही नहीं, नदी में बाढ़ आने पर इन्द्रद्युम्न नहान लगता है। कहीं नदी के आधे जल, आधे तट पर मुर्दे रखे जाते हैं, कहीं मछली का शिकार होता है, कहीं स्त्रियाँ नावर खेलती हैं, कहीं कजली होने लगती है। रुधिरसरिता के सम्बन्ध में भी सभी कुछ दिखलाया गया है, यथा—

मज्जहिं भूत पिशाच बेताला।
प्रमथ महाझोटिङ्ग कराला॥
कहँरत भट घायल तट गिरे।
जहँ तहँ मनहु अर्धजल परे॥
खैंचहिं गीध आँत तट भये।
जनु बंसी खेलहिं चित दये॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं।
जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥
जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं।
भूतपिसाचवधू नभ नंचहिं॥
भट कपाल करताल बजावहिं।
चामुण्डा नानाविध गावहिं॥

भाद्रपद की अन्तिम वर्षा रावणवध कहते हुए लिखते हैं—

प्रतिमा रुदहिं पविपात नभ अतिवात बह डोलत मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रच असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित विलोकि नभ सुर विकल बोलहिं जय जये।
सुर समय जानि कृपाल रघुपति चापसर जोरत भये॥

यहाँ 'वर्षा घोर निशाचर रारि' समाप्त हो गई, परन्तु बिना आश्विन में हस्त का जल पाए, सुरकुलशालि का पूरा मङ्गल नहीं होता। अतः हस्त की वृष्टि कह कर वर्षा का प्रकरण समाप्त करते हैं।

कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु, अभय किये सुरवृन्द।
भालु कोस सब हरषे जय सुखधाम मुकुंद॥

रामराज सुख विनय बड़ाई।
बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥

श्री गोस्वामीजी ने रामराज्य को शरद माना है। शरद में दो मास होते हैं एक आश्विन दूसरा कार्तिक। इसी भाँति रामराज्य में भी दो विभाग हैं-एक राज्याभिषेक और दूसरा राज्य का सुख विनय और बड़ाई। आश्विन के प्रथम पक्ष में, जिसे पितृपक्ष कहते हैं, लोग पितरों की अक्षय तृप्ति के लिये श्राद्ध करते हैं। यहाँ भी पितृतृप्ति हेतु बनवास व्रत, जो श्रीरामजी ने चौदह वर्ष के लिये धारण किया था, पूरा हुआ और उसके उपलक्ष्य में भक्तमौलिमणि भरतलालजी तथा प्रजावर्ग ने जो व्रत धारण किया था उसकी भी पूर्णाहुति हुई। भगवान् ने जटायु से कहा था कि—

सीताहरन तात जनि कहेउ पिता सन जाय।
जौ मैं राम तो कुलसहित कहिहि दसानन आय॥

उसकी भी सविधि पूर्त्ति हुई। दशानन ने जा कर कहा, महाराज को बड़ी तृप्ति हुई, स्वयं आये।

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए।
तनय बिलोकि नयन जल छाए॥
अनुज सहित प्रभु बंदन कीन्हा।
आसिरबाद पिता तब दीन्हा॥
तात अकथ तव पुन्य प्रभाऊ।
जीत्यों अजय निसाचर राऊ॥
सुनि सुतबचन प्रीति अति बाढ़ी।
नयन सलिल रोमावलि ठाढ़ी॥
रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना।
चितइ पितहि दीन्हेउ दृढ़ ज्ञाना॥

पिता का परलोक से आगमन हुआ और हर्षित होकर वे सुरधाम गये। पितृपक्ष समाप्त हुआ। अब जगदम्बा के आगमन की अत्यन्त

उत्कण्ठा है। अयोध्या में धवलगिरि के ले जाते समय हनुमान् जी द्वारा सीताहरण का समाचार आ चुका है। अतः जगदम्बा सहित सरकार के लौटने की प्रतिक्षा हो रही है। हनुमानजी ने विप्रवेष से भरतजी के समीप जाकर उन्हें समाचार दिया कि—

जासु विरहँ सोचहु दिन राती।
जपहु निरन्तर गुनगन पाँती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता।
आएउ कुशल देवमुनित्राता॥

पर भरतजी स्तब्ध रह गये, बुद्धिमतां वरिष्ठ हनुमान्‌जी ने सब लख लिया, तुरन्त बोले—

रिपु रन जीति सुजस सुर गावत।
सीता अनुज सहित प्रभु आवत॥

फिर क्या था—

सुनत बचन बिसरे सब दूखा।
तृषावन्त जिमि पाइ पियूखा॥

जगदम्बा के आने का समाचार पाते ही भरत जी निहाल हो गये। समाचार नगर में पहुँचा, घर घर बधाइयाँ बजने लगीं। फिर भगवती का सरकार के साथ आगमन हुआ। उस प्रेमानन्द के स्वागत का जैसा वर्णन कवि ने किया है, उसका आनन्द, प्रसङ्ग के पढ़ने से ही मिल सकता है।

अब राज्याभिषेक की तैयारी हुई—

सासुन्ह सादर जानकिहिं मज्जन तुरत कराइ।
दिव्य बसन बर भूषन अंग-अंग सजे बनाइ॥
राम बामदिसि सोभित रमा रूपगुनखानि।
देखि मातु सब हरषीं जनम सुफल निज जानि॥
सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सुरमुनिबृंद।
चढ़ि विमान आये सब सुर देखन सुखकंद॥

सरकार के साथ महामाया का अभिषेक हुआ। श्री गोस्वामी जी कहते हैं—

नभ दुन्दुभी बाजहिं विपुल, गन्धर्व किन्नर गावहीं।
नाचहि अपछ- राबृन्द परमानन्द सुर मुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज विभीषनांगद हनुमदादिक साजते।
गहे छत्र चामर व्यजन धनु असि चर्म शक्ति विराजते॥
श्री स्वस्ति दिनकरवंसभूषन कामबहुछबि सोहहीं।
नव अंबुधर वर गात अंबर पीत सुरमन मोहहीं॥

वह सोभा समाज सुख कहत न बनै खगेस।
बरनै सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस॥

इस भाँति नवरात्र में जगदम्बा का आगमन और विजयादशमी का उत्सव कहा है। तत्पश्चात् रामराज्य के सुख, विनय और बड़ाई का वर्णन है—

पंक न रेनु सोह अस धरनी।
नीतिनिपुन नृप कै जस करनी॥
जानि सरद रितु खंजन आये।
पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये॥

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा।
जिमि हरिसरन न एकउ बाधा॥
देखि इन्दु चकोर समुदाई।
चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥

यहाँ पर चन्द्रमा का वर्णन करके शरत पूर्णिमा कही। अब दीपावली (दीवाली) आई। नगर की कायापलट हो गयी, सब मकानों में तैयारियाँ होने लगीं। तमाम शहर जगमगा उठा। श्री गोस्वामी जी कहते हैं—

जातरूप मनिरचित अटारी।
नाना रङ्ग रुचिर गच ढारी॥
पुर चहुँपास कोट अति सुन्दर।
रचे कंगूरा रंग रंग बर॥
नवग्रह निकर अनीक बनाई।
जनु घेरी अमरावति आई॥
महि बहुरङ्ग रचित गच काँचा।
जो बिलोकि मुनिवर मन नाँचा॥
धवल धाम ऊपर नभ चुंबत।
कलस मनहु रबि ससि दुति निंदत॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं।
गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥

मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरी बिद्रुम रची।
मनि खंभ बीच बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खँची॥

इत्यादि।

कार्तिक स्नान, तुलसीपूजन, राधादामोदर की उपासना भी हो रही है।

रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥

जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं।
बैठि परसपर इहै सिखावहिं॥
जनकसुता समेत रघुबीरहिं।
कस न भजहु भञ्जन भवभीरहिं॥

इस भाँति श्रीरामचरित में रामराज्य की समता शरद से दी गई है। रामचरित की समाप्ति रामराज्य से मानी गई है और वर्ष की समाप्ति भी प्राचीन काल में शरद से ही की जाती थी। वैदिक साहित्य में वर्ष के स्थान में शरत् शब्द का ही प्रयोग होता है। सम्भवतः

-राम-राज्य को शरद से उपमित करने का यह भी एक कारण हो सकता है।

सतीसिरोमनि सिय गुन गाथा।
सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई।
सदा एक रस बरनि न जाई॥ ४॥

अर्थ—सतीशिरोमणि सीताजी की जो गाथा है, वही इस निरुपम जल के निर्मल गुण हैं, भरतजी का स्वभाव ही सुन्दर तरावट है, जो सदा एकरस रहता है और जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सतीशिरोमनि सिय—सीताजी सतीशिरोमणि हैं। पतिव्रतधर्म खड्गधारा व्रत है, इसपर चढ़ना कठिन है। तनिक-सी भी असावधानी से पतन होता है। सो ऐसी तलवार की धार पर स्त्रियां सीताजी का नामस्मरण कर के चढ़ जाती हैं। भावार्थ यह कि पतिप्राणा सीताजी का स्मरण रहने से उनका पतन नहीं होता। अतः सीताजी को सती-शिरोमणि कहा, यथा—

सनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥

महाराज जनक की प्यारी बेटी, चक्रवर्ती महाराज दशरथ की स्नुषा, साक्षात् राघवेन्द्र रामभद्र की प्राणवल्लभा, इन्हें क्या मालूम कि दुःख क्या है! इनको श्रीरामचन्द्र के साथ बन जाने के लिये प्रस्तुत देखकर कौशल्याम्बा विकल हो उठीं। कहने लगीं कि—

पलँगपीठ तजि गोद हिंडोरा।
सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहेऊं।
दीपबाति नहिं टारन कहेऊं॥
सो सिय चलन चहति बन साथा।
आयसु काह होइ रघुनाथा॥

स्वयम् श्रीरामजी ने कितना समझाया, महाराज चक्रवर्तीजी ने समझाया पर इस विषय में इन्होंने किसी की नहीं सुनी। अन्त में सुमन्तजी के समझाने पर स्पष्ट कह दिया 'आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात।' तापस वेष में सीताजी को देख कर महाराज जनक कृतकृत्य हो गये, बोले—

पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ।
सुजस धवल जग कह सबु कोऊ॥
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी।
गवन कीन्ह विधिअंडक डोरी॥
गङ्ग अवनि थल तीन बड़ेरे।
एहि किये साधु समाज घनेरे॥

गुनगाथा—सीताजी की गुणगाथा से ही रामायण भरा पड़ा है। इसीलिये महर्षि वाल्मीकि रामायण को 'सीतायाश्चरितं महत्' कहते हैं। इनकी गुणगाथा की ख्याति से ही द्वीप-द्वीप के राजा स्वयम्बर में आये थे, इनकी गुणगाथा पर ही मुग्ध होकर देवता और दनुज भी मनुष शरीर धारण करके बिना बुलाये स्वयम्बर में आ गये, इनके गुणों से ही वशीभूत हो कर कौशल्याम्बा ने आँख की पुतली बनाकर रक्खा, इनके गुणों से ही प्रभावित होकर सारी प्रजा केवल राम के ही राजा होने की प्रार्थना नहीं करती थी, जानकीजी के रानी होने के लिये भी देवता मनाती थी, इनके गुणों की ही महिमा थी कि रामजी जैसे धीर गम्भीर पुरुषोत्तम भी इनके विवाह में विक्षिप्त से हो गये।

दूसरी बात यह कि श्रीरामजी में भी जो गुण हैं, वे जानकीमाई के ही। वे तो नित्य निर्गुण हैं, उनमें गुण कहाँ? सृष्टि, स्थिति, लय करनेवाली, तो भगवती ही हैं। रामजी तो केवल प्रेरक मात्र हैं, यथा—'श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी। जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥' श्रीरामावतार भी वस्तुतः श्री जानकीजी का ही अवतार है, नहीं तो निर्गुण, निर्लेप, अखण्ड का

अवतार ही नहीं बनता। स्वयम् श्रीरामजी ने सीताजी की ओर इङ्गित करके कहा कि—

आदिसक्ति जेहि जग उपजाया।
सो अवतरिहि मोर यह माया॥

अध्यात्म रामायण में ज्ञानोपदेश करते समय श्रीजनकनन्दिनी ने हनुमान्‌जी से कहा कि मैंने ही राम होकर अयोध्या में जन्म लिया, मैंने ही धनुष-भङ्ग करके सीता का पाणि-ग्रहण किया, श्रीरामजी तो निष्क्रय हैं। श्रीरामजी का निरूपण तो वेद नेतिनेति कर कहता है, गुणगाथा तो सब महामाया जनकनन्दिनी की ही है।

अनूपम पाथा—राम सुयश जल निरुपम है, क्योंकि रामजी स्वयम् निरुपम हैं। भुशुण्डि जी कहते हैं—

अस सुभाउ कहुँ सुनेउँ न देखउँ।
केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥

वेद कहते हैं—

जय सगुन निर्गुन राम रूप अनूप भूप सिरोमने।

श्री गोस्वामीजी कहते हैं—

उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कवि कोबिद कहैं।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इनसे एइ अहैं॥

महाराज जनकजी के दूत कहते हैं—

जिनके जस प्रताप के आगे।
ससि मलीन रवि सीतल लागे॥

अर्थात् यश और प्रताप अनुपम हैं।

सोइ गुन अमल—जिस भाँति जल की अनूपता उसके निर्मल, दिव्य गुणों पर ही निर्भर है, इसी भाँति रामजी के यश की अनूपता का कारण सीताजी के दिव्य गुण हैं। गुण और गुणी में अभेद सम्बन्ध होता है, इसी लिए सीता और रामजी में अभेद कहा भी गया है यथा—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बंदौ सीता राम पद जिनहिं परमप्रिय खिन्न॥

भरत सुभाउ—श्रीरामजी ने भरतजी का स्वभाव वर्णन करते हुए उन्हें आज्ञाकारी और सयाना साधु कहा। बृहस्पति जी ने भी इन्द्रदेव के समझाने के समय कहा कि 'भरतजी रामभक्त हैं' दूसरों की भलाई चाहने वाले हैं। दूसरों के दुख से दुखी होते हैं, ऐसे महापुरुष से भयभीत होने का कोई कारण नहीं है, यथा—

भरत कहे महुँ साधु सयाने।

राम भगत परहितनिरत, परदुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥

सुसीतलताई—भरत का स्वभाव ही रामयश सलिल की सुन्दर तरावट है। तरावट अधिक होने से भी जल का स्वाद नहीं आता, गरम जल से भी तृप्ति नहीं होती, अतः 'सुशीतलताई' कहा। भरत-स्वभाव के रामयश का अङ्ग होने में कारण यह है कि श्रीरामजी में और भरतजी में अन्तर नहीं है, यथा—

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ।
भरतहिं मोहिं कि अन्तर काऊ॥

भरतजीके स्वभाव का प्रभाव सम्पूर्ण रामचरित में चमकता है। भरतजी के सङ्कोच से श्रीरामजी पिता का वचन छोड़ने तक को तैयार हो गये थे, यथा—

मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।
सत्यसन्ध रघुवर वचन सुनि भा सुखी समाजु॥

परन्तु भरतजी ने संकोच में डालना उचित न समझा और बोल बैठे—

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करिहिं सबु मिटिहि अनट अवरेव॥

श्रीभरतलाल स्वामी पर किसी बात के लिये संकोच डालना नहीं चाहते, उनका सब प्रयत्न इसीलिये है कि स्वामिसेवकभाव में भेद न

पड़ने पावे, जिसकी कि कैकेयी के वरदान से पूरी सम्भावना थी। श्रीभरतलाल के वरदान से प्रसन्न होकर ही गुरूजी ने कहा कि—

समुझब कहब करब तुम्ह जोई।
धरमसारु जग होइहि सोई॥

अतः श्रीभरतलाल के स्वभाव को सुशीतलताई कहा।

सदा एकरस—श्रीभरतलाल के स्वभाव में कभी अन्तर पड़ता ही नहीं, इसलिये एकरस कहा। कैसा हो दुख हो, सुख हो, जो हो, श्रीभरतलालजी की वृत्ति एक सी ही रहती है। स्वयम् रामजी कहते हैं—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा।
विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

भरतहिं होइ न राजमद विधिहरिहरपद पाइ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥

तिमिर तरुन तरनिहिं मकु गिलई।
गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी।
सहज छमा बरु छाड़इ छोनी॥
मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई।
होइ न नृपमदु भरतहिं भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना।
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
सगुन खीरु अवगुन जल ताता।
मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥
भरत हंस रघुबंस तड़ागा।
जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी।
निज जस जगत कीन्ह उजियारी॥

बरनि न जाइ—भरतलाल की श्रीरामजी के चरणों में स्वाभाविकी प्रेमाभक्ति है, यथा—

वंदौ प्रथम भरत के चरना।
जासु नेम व्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू।
लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

यह प्रेमाभक्ति अवर्णनीय है। इस विषय में—

प्रेम भगति जो बरनि न जाई।
सोइ मधुरता सुसीतलताई॥

इस अर्धाली की टीका में कहा जा चुका है।

इस स्वभाव के वर्णनातीत होने के विषय में श्रीविदेहराज कहते हैं—

भरत अमित महिमा सुनु रानी।
जानहिं राम न सकहिं बखानी॥

श्री ग्रन्थकार कहते हैं—

भरत महा महिमा जलरासी।
मुनिमति तीर ठाढ़ि अबला-सी॥
गा चह पार जतन हिय हेरा।
पावति नाव न बोहित बेरा॥

अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहुँ बंधु की, जल माधुरी सुवास॥

अर्थ—चारों भाइयों का आपस में देखना, बोलना, मिलना, प्रेम, हँसी और भाईपन यही जल की मिठास और सुगन्ध है।

अवलोकनि बोलनि—सब भाई श्रीरामचन्द्र जी के मुखकमल को देखा करते हैं, कि कभी प्रभु कृपा करके मुझे भी आज्ञा देवें और जब प्रभु उनकी ओर देखते हैं, तो सब लोग नीचे देखने लगते हैं, यथा—

प्रभु मुख कमल विलोकत रहहीं ।
कबहुँ कृपालु हमहि कछु कहहीं ॥
महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन ।
दरसन तृपित न आजु लगि प्रेमपियासे नैन ॥

प्रभु की यह गति है कि भाइयों के मन की गति देखा करते हैं। कोई इच्छा जहाँ उनके मन में आई, तहाँ उसकी पूर्ति के लिये भक्त-वत्सल भगवान् आकुल हो उठते हैं, यथा—

राम अनुज मन की गति जानी ।
भगत वछलता हिय हुलसानी ॥
परम विनीत सकुचि मुसुकाई ।
बोले गुरु अनुसासन पाई ॥
नाथ लखन पुर देखन चहहीं ।
प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥

किंच—

अन्तरजामी प्रभु सब जाना ।
बूझत कहहु काह हनुमाना ॥
जोरि पानि कह तब हनुमन्ता ।
सुनहु दीनदयाल भगवन्ता ॥
नाथ भरत कछु पूछन चहहीं ।
प्रस्न करत मन सकुचत अहहीं ॥

बोलने की यह गति है कि जब तक भरत जी हैं, तब तक मानो लक्ष्मण जी और शत्रुघ्न जी कहीं हैं ही नहीं। प्रभु जब चित्रकूट गये, लक्ष्मण जी साथ थे, अवसर पड़ने पर बिना पूछे भी बोलते थे, यथा—

बिनु पूछे कछु कहहुँ गोसांई ।
सेवक समय न ढीठ ढिठाई ॥

वही लक्ष्मणजी भरतजी के आजाने पर एकदम चुप हैं, अब भरत जी ही बोलते हैं। दो दो सभा हो गई, राज्य के विषय में विचार हो रहा है, पर लक्ष्मण जी मानो हैं ही नहीं।

बड़े लोग एकत्रित हैं, जैसा उचित समझेंगे करेंगे, मैं तो दोनों का सेवक ठहरा, यही भाव न बोलने में है। रामजी के विरोध की आशङ्का से श्री लक्ष्मणजी, भरतलाल से भी युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हो गये, यथा—

राम निरादर कर फल पाई।
सोवहु समर सेज दोउ भाई॥

पर इस शङ्का के हटते ही प्रेममय लखनलालजी फिर वही हैं। भरतजी का सप्रेम वचन सुनकर स्वामी की सेवा का सँभार कठिन हो गया, यथा—

बचन सप्रेम लखन पहिचाने।
करत प्रनामु भरत जिय जाने॥
बन्धु सनेह सरस एहि ओरा।
उत साहिब सेवा बल जोरा॥
मिलि न जाइ नहि गुदरत बनई।
सुकवि लखन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू।
चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥
कहत सप्रेम नाइ महि माथा।
भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥

सबसे छोटे शत्रुघ्न जी हैं। श्रीरामचरित में उन्हें बोलने का अवसर ही नहीं है, क्योंकि सदा भरतजी के साथ हैं। जब भरतलाल लक्ष्मण-लाल न रहें, तब उन्हें बोलने का अवसर मिले। ऐसा प्रेम और ऐसा विनय चारों भाइयों में था।

मिलनि—मिलन का आनन्द तो दो स्थानों पर विशेषरूप से दिखाई पड़ता है, एक चित्रकूट में और दूसरा बन से लौटने पर अवध में। उनमें भी चित्रकूट का मिलन विशेषतः उल्लेख योग्य है, यथा—

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा।
कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥
बरबस लिये उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि, बिसरे सबहिं अपान॥
मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी।
कविकुल अगम करम मन बानी॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई।
मन बुधि चित्त अहमिति बिसराई॥
कहहु सुपेमु प्रगट को करई।
केहि छाया कविमति अनुसरई॥
कविहिं अरथ आखर बल साँचा।
अनुहरि ताल गतिहिं नट नाचा॥
अगम सनेह भरत रघुबर को।
जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को॥
सो मँइ कुमति कहाउँ केहि भांती।
बाज सुराग कि गांडर तांती॥

प्रीति परसपर—प्रीति तो इतनी बढ़ी चढ़ी है कि श्रीरामजी जिस पिता का वचन मान कर राज्य छोड़ बन को गये, उस पिता के वचन से अधिक भरतलाल के सङ्कोच को स्थान दे रहे हैं, यथा—

राखेउ राउ सत्य मोहि त्यागी।
तन परिहरेउ प्रेम पनु लागी॥
तासु वचन मेटत मन सोचू।
तेहिते अधिक तुम्हार सकोचू॥

श्रीलखनलाल को शक्ति लगने पर भी प्रभु ऐसी ही बात कहते हैं कि यदि मैं जानता कि वन में भाई का विछोह होगा तो चार दिन के लिये तो मैं बन आता ही नहीं, चौदह वर्ष की कौन चलावे, यथा—

जौ जनतेउँ बन बन्धु बिछोहू।
पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू॥

भरतलाल लक्ष्मणलाल तथा शत्रुघ्नलालजी का प्रेम भी इतने उच्चकोटि का है कि प्रभु यदि अयोध्या लौट जायँ तो तीनों भाई जन्मभर वनवास के लिए प्रस्तुत हैं; यथा—

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई।
वहुरिअ सीय सहित रघुराई॥

ह्रास—यद्यपि चारों भाई परम संकोची हैं, फिर भी समय समय पर हँसी भी हो जाया करती है। रावण की बहन सूपनखा ब्याह का प्रस्ताव लेकर रामजी के सम्मुख उपस्थित है, सरकार सीताजी की ओर इङ्गित करके उसे बतलाते हैं कि 'अहै कुमार मोर लघु भ्राता'। लखनलालजी उसे समझा बुझाकर फिर सरकार के पास लौटा देते हैं कि मैं सेवक ठहरा मुझसे ब्याह करने में कौन सुख है। मैं एक के ही पालन में असमर्थ हूँ—और सरकार अयोध्या के राजा हैं—चाहे जितना ब्याह करें, यथा—

प्रभु समरथ कोसलपुर राजा।
जो कुछ करहिं उन्हहिं सब छाजा॥

इस भाँति भाइयों में कभी कभी हँसी भी हो जाया करती थी। गीतावली में वसन्तोत्सव के समय में लिखते हैं—'नर-नारि परस्पर गारि देत। सुनि हँसत राम- भ्रातन समेत॥' अतः 'अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परस्पर हाँस' को जल की मिठास कहा अर्थात् रामयश रूपी जल में उपर्युक्त बातें ही मिठास हैं। साधुमुखच्युत रामयशवारि में प्रेमाभक्ति को मधुरता और शीतलता दोनों कहा था, पर यहाँ कविता-सरित के रामयशवारि में भरत सुभाव को शीतलता और चारों भाई के व्यवहार तथा प्रेम को मधुरता कहा। भाव यह कि भक्ति का माधुर्य्य सब में बराबर पर भरतजी में स्वभाव की शीतलता अधिक है। मन्थरा को दण्ड देना भी भरतलाल से न देखा गया, यथा—भरत दयानिधि दीन्ह छोड़ाई।

भायप भलि चहुँ बन्धु की—कुसंकट के समय में सहायक होना ही बन्धुता है यथा—

ओड़इइ हाथ असनिहु के घाए।
होहिं कुठारइ बंधु सहाए॥

सो इन चारों भाइयों का भाइपन जगत विख्यात है। अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परस्पर हास को तो अति सन्निकटवर्त्ती ही जान सकते हैं। अतः उनकी उपमा मिठास से दिया। मिठास को चखनेवाला ही जानता है, इसी भाँति उपर्युक्त बातों को देखनेवाले ही जानते हैं। पर सुवास तो दूर तक फैलता है, एवम् भायप भी संसारभर में प्रसिद्ध है, अतः भायप की उपमा 'सुगन्ध' से दिया।

पिता युवराज पद दिया चाहते हैं, स्वयम् गुरुजी आदेश लेकर आये हैं। अवध में बधावा बज रहा है, माताएँ फूले नहीं समा रही हैं, मित्र लोग मिलने आ रहे हैं, पर प्रभु सोच में पड़े हुए हैं, यथा—

जनमेउ एक संग सब भाई।
भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनवेध उपवीत बिआहा।
सङ्ग सङ्ग सब भये उछाहा॥
विमल वंस यहु अनुचित एकु।
बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई।
हरहु भगत मन की कुटिलाई॥

इधर कैकेयीजी के वरदान से रामजी वन गये, महाराज ने शरीर त्याग दिया। भरतजी मनाने के लिये चित्रकूट गये, वहाँ सोचते हैं—

केहि विधि होइ राम अभिषेकू।
मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥
अवसि फिरहिं गुरु आयसु मानी।
मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहु बहुरहिं रघुराऊ।
राम जननि हठ करब कि काऊ॥

मोहिं अनुचर कर केतिक बाता ।
तेहि मह कुसमउ वाम विधाता ।।

श्री लक्ष्मणजी के शक्ति लगने पर श्री राम जी कहते हैं—

मेरे प्रन की लाज इहालौ हठि प्रिय प्रान दये ।
लागत शक्ति विभीषनही पर सीपर आपु भये ।।

हनुमान् जी सञ्जीवनी बूटी लेने गये सो धवलागिरि लेकर लौटे, भरतजी ने राक्षस जान कर बाण मारा, हनुमान्जी मूर्छित होकर गिरे । जागने पर सब समाचार कहा । सुमित्राम्बा शत्रुघ्नजी को हनुमान् के साथ जाने की आज्ञा देती है, शत्रुघ्नजी अहोभाग्य मानकर उठ खड़े होते हैं । कहाँ तक लिखा जाय, सम्पूर्ण रामायण ही भायप से भरा है ।

जलमाधुरी सुवास—जल में निर्मलता, मधुरता, शीतलता और सुगन्ध, ये चार गुण होते हैं सो क्रम से चारो कहा । 'सती सिरोमनि सिय गुन गाथा । सोइ गुन अमल अनूपम पाथा' से निर्मलता कहा । 'भरत सुभाउ सुसीतलताई । सदा एकरस वरनि न जाई' से तरावट कहा' 'अवलोकनि बोलनि मिलनि आदि' से मधुरता और सुवास कहा—

आरति विनय दीनता मोरी ।
लघुता ललित सुबारि न खोरी ।।
अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी ।
आस पिआस मनोमलहारी ।।

अर्थ—मेरी आर्ति, विनय और दीनता ही सुन्दर हलकापन है, सुन्दर जल में कोई दोष नहीं है । अनोखा जल है, सुनते ही फायदा करता है, आसरूपी प्यास और मन के मैल को दूर करता है ।

आरति विनय दीनता—आर्ति पीड़ा या दुःख को कहते हैं । विनय से यहाँ प्रार्थना अभिप्रेत है । दीनता अर्थात् गरीबी । आर्ति और दीनता ही विनय का कारण है । आर्त्त विचार कर बात नहीं बोलते, वे पीड़ित हैं, अपना ही दुःख गावेंगे । दीन को अपने पुरुषार्थ का भरोसा नहीं रहता, सदा समर्थ से ही आशा रखते हैं ।

आर्त, यथा—

आरत कहहि विचारि न काऊ।
सूझ जुआरिहिं आपन दाऊँ॥

दीन, यथा—

तुलसी त्रिपथ विहाइ गो राम दुवारे दीन।

मोरी—इस रामयशसरित में, जिस भाँति सीताजी के गुणगाथ, भरतजी का स्वभाव, चारो भाइयों का बरताव, प्रेम और भाईपन सम्मिलित है, उसी भाँति मेरी आर्त्ति, विनय और दीनता भी सम्मिलित है। स्थूल रूप से तीन विभाग वन्दना में श्री गोस्वामी जी ने किया है—(१) समष्टि वन्दना (२) कविसमाज वन्दना और (३) समाज सहित रामजी की वन्दना, और तीनों के सामने आर्त्ति, विनय और दीनता दिखलाया है। (१) समष्टि के सामने (क) आर्त्ति, यथा—

करन चाहो रघुपति गुनगाहा।
लघु मति मोरि चरित अवगाहा॥
सूझ न एकौ अंग उपाऊ।
मन अति रंक मनोरथ राऊ॥
मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी।
चहिअ अमिअ जग जुरै न छाँछी॥
छमिहहि सज्जन मोरि ढिठाई।
सुनिहहिं बाल वचन मन लाइ॥
भाषा भनिति भोरि मति भोरी।
हँसिवे जोग हँसे नहि खोरी॥

(ख) विनय, यथा—

जानि कृपा करि किंकर मोहू।
सब मिलि करहु छाड़ि छल छोहू॥
निज बुधिबल भरोस मोहिं नाहीं।
ताते विनय करौं सब पाही॥

(ग) दीनता—

कवि न होउँ नहि वचन प्रवीनू।
सकल कला सब विद्या हीनू॥
आखर अरथ अलंकृत नाना।
छंद प्रबंध अनेक विधाना॥
भावभेद रसभेद अपारा।
कवित दोष गुन विविध प्रकारा॥
कवित विवेक एक नहिं मोरे।
सत्य कहौं लिखि कागद कोरे॥

(२) कविसमाज के सामने—

(क) आर्ति, यथा—

राम सुकीरति भनिति भदेसा।
असमंजस अस मोहि अँदेसा॥
तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे।
सिअनि सोहावनि टाट पटोरे॥

(ख) विनय, यथा—

होहु प्रसन्न देहु बरदानू।
साधु समाज भनिति सनमानू॥

(ग) दीनता, यथा—

सो न होइ बिनु विमल मति,
मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहउँ,
पुनि पुनि करउँ निहोर॥

(३) रामजी के सामने—

(क) आर्ति, यथा—

राम सुस्वामि कुसेवक मोसो।
निज दिसि देखि दयानिधि पोसो॥

(ख) विनय, यथा—

मोरि सुधारिहिं सो सब भांती।
जासु कृपाँ नहिं कृपा अघाती॥

(ग) दीनता, यथा—

रीझत राम सनेह निसोते।
को जग मंद मलिन मति मोते॥

यह आर्ति विनय और दीनता प्रभुचरित सम्बन्धी है, अतः रामयश-सरित में सम्मिलित है। सम्म्पूर्ण ग्रन्थ में इस आर्त्ति, विनय, दीनता की झलक दिखाई पड़ती है, यथा—

"वरनै तुलसीदास किमि अति मतिमंद गँवार।" इत्यादि।

लघुता ललित—जल में हलकापन का होना एक अत्यन्त आवश्यकीय गुण है।। जल यदि भारी हुआ तो किसी काम का नहीं। अतः जल के लघुता के साथ ललित शब्द का प्रयोग है, परन्तु जो जल के लिये आवश्यकीय गुण है, वही रामसुयश के लिये दोष समझा जायगा। जल के लिये हलकापन गुण है, पर रामसुयश को हलका कैसे कहा जाय और जब जल के साथ रूपक बाँधा है, तो हलकापन कहना ही चाहिये, अतः कहते हैं—

सुवारि न खोरी—(रामसुयशरूपी जल में) जो हलकापन है, उसके लिये कवि कहता है कि वह मेरा है। मेरी आर्ति, विनय और दीनता का योग जो इस रामयशपूरित कविता-सरिता से हुआ वही इसी जल का हलकापन है। नहीं तो रामयश में दोष नहीं है।

अद्भुत सलिल—यह रामसुयशरूपी सलिल अद्भुत है, विलक्षण है। यद्यपि जिस जल की साधु मेघ द्वारा वर्षा हुई, उसीसे मानससर भरा और वही कविता-सरितारूप में उमग चली, तथापि वर्षा के जल, तड़ाग के जल और नदी के जल के गुणों में अन्तर पड़ जाता है, इसीलिये रामयशरूपी जल के गुणों का तीनों स्थानों में पृथक् पृथक् वर्णन किया है। मेघजल के विषय में कहते हैं—

मेघा महिगत सो जल पावन।
सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना।
सुखद सीतरुचि चारु चिराना ॥

तड़ाग के जल के विषय में कहते हैं—

अस मानस मानस चख चाही।
भइ कविबुद्धि विमल अवगाही ॥
भयेउ हृदय आनंद उछाहू।
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू ॥

भावार्थ यह कि दोनों में श्रवण के बाद मनन, निदिध्यासन करने पर लाभ हुआ है, पर यह कविता-सरिता जो प्रसरित हुई इसका जल अद्भुत है, कारण कहते हैं—

सुनत गुनकारी—सभी प्रकार के जल पीने पर ही अपना गुण दिखलाते हैं, तभी पिपासा, ग्लानि आदि दूर होती है, पर यह जल ऐसा है कि इसके सुनने से गुण होता है. अर्थात् केवल श्रवण से भी लाभ पहुँचता है, यदि मनन निदिध्यासन भी हो तो कहना ही क्या है। मनन निदिध्यासन न भी हो, केवल कान में पड़ जाय तौभी—

आस पिआस मनोमलहारी—यह जीवरूपी मृग संसारकान्तार में पड़ा हुआ अनन्तकाल से मृगतृष्णा के पीछे दौड़ रहा है। आशा लगी है कि अब जल मिला, अब जल मिला, पर जितना ही दौड़ता है, जल भी उतनी दूर आगे बढ़ता चला जाता है। कारण यह है कि जिसे वह जल देख रहा है, वह वस्तुतः मध्यान्ह के सूर्य्य की किरणें हैं। यहाँ जल का नाम भी नहीं है। अतः जल की प्राप्ति कैसे हो। श्रीरामयश तो वस्तुतः जल है, अर्थात् सुखरूप है, इसका पान श्रवण-पुट द्वारा होता है। यथा—

राम चरन रति जो चहै, अथवा पद निर्वान।
भाव सहित सो यह कथा, करौ श्रवनपुट पान ॥

इसके पान करने से वास्तविक सुख की प्राप्ति होती है, इसीसे 'आस पियास मनोमल हारी' कहा। जिस भाँति मृग मरुमरीचिका के पीछे दौड़ते दौड़ते श्रान्त हो जाता है, इसी भाँति मन भी सुख के लिए चेष्टा करते करते ग्लानियुक्त हो गया है। यही मनोमल है, इसकी भी हानि इसी कथामृत पान से हो जाती है।

अथवा रामयशसलिल का तीन गुण इस अर्धाली में कहा—(१) गुनकारी (२) आसपियासहारी और (३) मनोमलहारी और सत्रह अगली चौपाइयों में कहेंगे, अर्थात् कुल मिलाकर बीस गुण कहे गये। चरित-सरित को भी श्री गोस्वामीजी ने बीस अंशों में वर्णन किया, और ये बीसों गुण क्रमशः इन्हीं बीसों अंशों के हैं। इनका विवरण आगे किया जायगा। यहाँ इतना ही कहना है, कि इन्हीं बीसों अंशों को ही लक्ष्य में रखकर श्री गोस्वामीजी ने बीस बार गिनकर कथा कहने की प्रतीज्ञा की, यथा—

(१) भाषानिबद्धमतिमंजुलमातनोति।

(२) बरनउं रामचरित भवमोचन।

(३) तेहि बल मै रघुपति गुन गाथा।
कहिहउँ नाइ रामपद माथा॥

(४) एहि प्रकार बल मनहि देखाई।
करिहौं रघुपति कथा सुहाई॥

(५) करहु कृपा हरि जस कहउँ,
पुनि पुनि करउँ निहोर॥

(६) सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ।
बरनौं रामचरित चित चाऊ॥

(७) सुमिरि सो नाम रामगुन गाथा।
करौं नाइ रघुनाथहि माथा॥

(८) बरनउँ रघुबर बिसद जसु,
सुनि कलिकलुष नसाइ।

(९) कहिहौं सोइ संवाद बखानी ।
सुनहु सकल सज्जन सुखमानी ॥
(१०) भाषाबद्ध करबि मैं सोई ।
(११) जस कछु बुधि विवेक बल मोरे ।
तस कहिहौं हिय हरि के प्रेरे ॥
(१२) निज संदेह मोह भ्रम हरनी ।
करौं कथा भवसरिता तरनी ॥
(१३) सो सब हेतु कहब मैं गाई ।
कथा प्रबंध विचित्र बनाई ॥
(१४) सादर सिवहिं नाइ अब माथा ।
बरनौं विसद रामगुनगाथा ॥
(१५) संवत् सोरह सै इकतीसा ।
करौं कथा हरिपद धरि सीसा ॥
(१६) कहउँ कथा सोइ सुखद सोहाई ।
(१७) अब सोइ कहौं प्रसङ्ग सब,
सुमिरि उमा वृषकेतु ।
(१८) करइ मनोहर मति अनुहारी ।
(१९) सुमिरि भवानी सङ्करहिं,
कह कवि कथा सोहाई ।
(२०) कहौं जुगल मुनि वर्ज कर,
मिलन सुभग संवाद ।

एवम् बीस बार प्रतिज्ञा कथन के सिवा इन बीसों अंश के कथन के अन्य कोई कारण नहीं मालूम होते, अतः प्रथम अंश 'उमा महेस विवाह बराती । ते जलचर अगनित बहुभांती' का महात्म हुआ 'अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी ।' यह शङ्का न उठानी चाहिये कि उमामहेश-विवाह रामयश का अङ्ग कैसे हुआ ? रामयश से सतीमोह का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है । वही सती पार्वती हुईं । उनसे श्रीमहेशजी का विवाह कराने के लिये श्रीरामजी प्रकट हुए और इस सम्बन्ध के लिये वरदान

माँगा—"जाइ बिवाहहु सैल-जहि यह मोहि माँगे देहु।" फिर बारात में रुद्रगणों के सम्मिलित होने के लिये ही भगवान् ने कहा कि—"बर अनुहार बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई।।" अतः "उमा महेस विवाह बराती" हरियश के अन्तर्गत है। हरियशरूपी सलिल के जलचर हैं। हरियश में ही विहार करते हैं।

ऐसी बरात कहीं देखी सुनी नहीं गई, जिसमें तीनों लोक के उपास्य देव, भाग्यवान् देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, पिशाच सभी वैर छोड़कर सम्मिलित थे। अगवान लोग जब बारात लेने गये, उस समय का वर्णन कवि करते हैं—

"हिय हरषे सुर सैन निहारी।
हरिहिं देखि अति भये सुखारी।।
शिव समाज जब देखन लागे।
बिडरि चले वाहन सब भागे।।
धरि धीरज तहँ रहे सयाने।
बालक सब लै जीव पराने।।" इत्यादि

ऐसी अद्‌भुत बारात थी, अतः अद्‌भुत सलिल कहते हैं। सुनत सुभकारी, यथा—

"यह उमा संभु बिवाह जे नरनारि कहहिं जे गावहीं,
कल्यान काज बिवाह मङ्गल सर्वदा सुख पावहीं।"

क्रमप्राप्त द्वितीय अंश "रघुवर जन्म अनंदबधाई। भँवर तरंग मनोहरताई" का माहात्म्य हुआ।

आसपियासहारी—महाराज चक्रवर्त्तीजी, महारानियां, परिजन और प्रजा सब आशा लगाए हुए हैं, सो रघुबर जन्म में बधाई बजते ही सब की आशा पूरी हुई सब आनन्द से भर गये, यथा—

"घर घर बाज बधाव सभ प्रकटेउ सुखमाकंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ, नगर नारिनरवृंद।।"

अतः इस अंश को पियासहारी कहा।

तृतीय अंश "बालचरित चहु बंधु के, बनज बिपुल बहु रंग। नृपरानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग" का माहात्म्य

हुआः—मनोमलहारी। बालचरित अत्यन्त सरल है, अतः मनोमल-हारी है, यथा—

बाल चरित अति सरल सुहाये।
सारद शेष सम्भु श्रुति गाये॥
राम सप्रेमहि पोषत पानी।
हरत सकल कलिकलुष गलानी॥
भौ श्रम सोषक तोषक तोषा।
समन दुरित दुख दारिद दोषा॥

अर्थ—यह जल श्रीरामजी के सुन्दर प्रेम को पोषण करता है, कलियुग के सब मल और ग्लानि को दूर करता है, संसार के श्रम को शोषण करने वाला और तुष्टि को भी तुष्ट करनेवाला है, और पाप, दुःख, दारिद्र और दोष का नाश करने वाला है।

पानी—पानीय अर्थात् पीनेवाली वस्तु। इसीसे जल का नाम पानीय है, उसीका प्राकृत-रूप पानी है। यहाँ 'पानी' शब्द के प्रयोग से रामयश के श्रवण का ही प्रसङ्ग द्योतित किया।

राम सुप्रेमहि पोषत—जिस भाँति जल शरीर का पोषण करता है, उसी भाँति यह रामयश रामजी के प्रेम को पोषण करता है। फल कामना वर्जित प्रेम होने से उसे सप्रेम कहा। यह चौथा माहात्म्य क्रम प्राप्त चौथे अंश "सीय स्वयम्वर कथा सहाई। सरित सोहावन सो छवि छाई" का है। सीय-स्वयम्वर में श्रीरामजी को श्रीजानकी और विश्व-विजय दोनों की प्राप्ति हुई, अतः यह कथा 'श्रीराम' के सप्रेम की पोषक है, इष्टदेव के उत्कर्ष श्रवण से प्रेम बढ़ता है। इस उत्कर्ष का वर्णन श्रीजनकराज के दूत ने किया, यथा—

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे।
पुरुषसिंह तिहुपुर उजियारे॥
जिन्हके जस प्रताप के आगे।
ससि मलीन रवि सीतल लागे।

तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हें ॥
देखिअ रवि कि दीप कर लीन्हें।
सीय स्वयम्बर भूप अनेका।
षिमिटे सुभट एक तें एका ॥ इत्यादि

हरत सकल कलिकलुष—जिस भांति जल सम्पूर्ण मलों का नाश करता है, उसी भांति यह रामयश सम्पूर्ण कलिमल का नाश करता है। यह पाँचवाँ माहात्म्य श्रीरामचरित के पाँचवें अंश "नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका ॥" का है। इस प्रश्नोत्तर में एक प्रकार से पूरा रामचरितमानस आ जाता है। क्योंकि महर्षि भरद्वाज के प्रश्न, उमा का विनय और प्रश्न, महर्षि याज्ञवल्क्य का उत्तर, शिवजी का उत्तर और भुशुण्डि जी का उत्तर, सभी का एक साथ सैर हो जाता है। अतः फलश्रुति में 'सकल कलि-कलुष हरण' कहना प्राप्त ही है।

गलानि—अर्थात् कलि जनित ग्लानि का भी हरण करता है। जिस भांति जलपान करने से मन की ग्लानि दूर होती है। यथा—'शुचि जल पिवत मुदित मन भयऊ।' इसी भांति इस रामयश पान करनेवाले को कलि (विरोध) जनित ग्लानि दूर होती है। यह छठा माहात्म्य छठे अंश "सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई" का है। श्रवण के बाद ही अनुकथन होता है। अनु-कथन में विश्राम अधिक होता है, अतः उसे ग्लानि का हरण करनेवाला कहा।

भवश्रम शोषक—जिस भांति जल में स्नान करने से श्रम दूर होता है यथा—'मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ' उसी भाँति रामचरित में अवगाहन करने से भवश्रम दूर होता है। यह सातवाँ माहात्म्य सातवें अंश 'घोर धार भृगुनाथ रिसानी' का है। भृगुनाथ की 'रिसानी' भी औताग्नि की भांति पवित्र है। ये महात्मा पूर्णरूप से कर्मयोगी थे। इनका क्रोध भी बन्धन का कारण नहीं था, क्योंकि यज्ञ से अन्यत्र

कर्म बन्धन का कारण होता है, और इनका क्रोध भी युद्ध यज्ञ के लिये ही था, यथा—

चाप श्रुवा सर आहुति जानू।
कोप मोर अति घोर कृसानू॥
समिध सेन चतुरंग सोहाई।
महा महीप भये पसु आई॥
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हे।
समर जग्य जप कोटिक कीन्हे॥

अतः इन महापुरुष को भवश्रम होता ही नहीं था। अतः इनकी रिसानी को 'भवश्रम शोषक' कहा।

तोषक तोषा—जल से जीव का तोषण होता है, पर श्रीरामयश से स्वयम् तोष को भी तोष होता है, अर्थात् तोष को भी तोषणशक्ति की प्राप्ति होती है। यह आठवाँ माहात्म्य आठवें अंश 'घाट सुबद्ध राम-बरबानी' का है। यहाँ रामजी की वाणी ऐसी है कि साक्षात् श्री परशु-रामजी का क्रोध जो कि श्री लखनलाल जी की वाणी से भभक उठता था, श्रीरामजी की वाणी से शान्त हो जाता था, यथा—"राम वचन सुनि कछुक जुड़ाने।" और अन्त में श्रीरामजी की ही वाणी से उनका मोह जाता रहा, यथा—

"सुनि मृदु वचन गूढ़ रघुपति के।
उघरे पटल परसुधर मति के॥"

समन दुरित—दिव्य नदियों में दुरित, दुःख दोष नाश की भी सामर्थ्य होती है, यथा—

"दरिद्राणां दैन्यं दुरितमथ दुर्वासनहृदाम्।
द्रुतं दूरी कुर्वन् सकृदपिगते दृष्टि शरणम्॥

अतः जिस भांति सरयू नदी दुरित को दूर करती है उसी भांति यह कविता सरित् भी दुरित को दूर करती है। यह नवां माहात्म्य नवे अंश "सानुज राम विवाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥"

का है। यह ऐसा पवित्र है कि इसे पुण्यमय कहना चाहिये, इसीलिए इसे दुरितशमन कहा, यथा—

जनक सुकृति मूरति वैदेही।
दसरथ सुकृति रामु घर देही॥
इन सम काहु न सिव अवराधे।
काहु न इन समान फल साधे॥

दुःख—सरयू नदी में स्नान करने से दुःख दूर होता है और श्रीरामयश के कहने सुनने में हर्षित और पुलकित होने से दुःख दूर होता है। यह माहात्म्य दशवें अंश "कहत सुनत हर्षहि पुलकाहीं। ते सुकृति मन मुदित नहाहीं" का है। राम विवाह में माताओं को महा आनन्द हुआ, यथा—

पावा परम तत्व जनु जोगी।
अमृत लहेउ जनु सन्तत रोगी॥
जनम रंकु जनु पारस पावा।
अंधहिं लोचन लाभ सुहावा॥

मूक वदन जस सारद छाई।
मानहु समर सूर जय पाई॥
इहि सख तें सत कोटि गुन, पावहिं मातु अनंदु।
भाइन्ह सहित विआहि घर, आए रघुकुलचंदु॥

अतः इस अंश को दुःखशमन कहा।

दारिद—सरयू के सेवन से दरिद्र भी दूर होता है, इस रामयश के सेवन से भी दरिद्र दूर होता है। वास्तविक दरिद्र मोह है, यथा—

"मोह दरिद्र निकट नहिं आवा।" परम अकिञ्चन साधु दरिद्र नहीं कहे जाते, यथा—"कोपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः" अकिञ्चन यदि मूढ़ हों तो निःसन्देह दरिद्र हैं, अतः मूढ़ता ही दरिद्रता है।

यह ग्यारहवाँ माहात्म्य ग्यारहवें अंश "राम तिलक हित मंगल साजा" का है। यहाँ जिसको कल तिलक होने वाला था, आज वही

स्त्री और अनुज के साथ वन जा रहा है। न मन में हर्ष न विषाद है, बल्कि वनगमन से तीनों व्यक्तियों को हर्ष है, यथा—

श्रीरामजी—

नव गयंद रघुवीर मन; राज अलान समान।
छूट जानि वन-गमन सुनि, उर अनंद अधिकान॥

लक्ष्मणजी—

बागुर विषम तोराइ मन, मनहु भाग मृग भाग बस॥

जानकीजी—

मोरि सोच जनि करिय कछु, मैं वन सुखी सुभाग।

अतः इस अंश से मूल दरिद्र मोह नष्ट हो जाता है। अथवा इतने विघ्न उपस्थित होने पर भी अन्त में राजलक्ष्मी ने श्रीरामजी का वरण किया ही, अतः इस कथा से दरिद्र का नाश होता है।

दोषा—जिस भांति सरयू सरित् दोष का नाश करती है, वैसे ही श्रीरामयश भी दोष का नाश करता है। यह बारहवाँ माहात्म्य बारहवें अंश 'काई कुमति कैकई केरी। परी जासु फल विपति घनेरी' का है। इस अंश में महाराज दशरथ की प्रेयसी भरतलाल की अम्बा परमशील-वती भगवती कैकेयी को भी दुष्टा मन्थरा के सङ्गदोष से कुमति उत्पन्न हुई, यथा—

विपति बीज बरषा रितु चेरी।
भुइं भई कुमति कैकई केरी॥
पाइ कपट जल अंकुर जामा।
वर दोउ दल दुख फल परिनामा॥

इस कथा से शिक्षा ग्रहण करनेवाले का दोष नष्ट हो जाता है।

काम कोह मद मोह नसावन।
विमल विवेक विराग बढ़ावन॥
सादर मज्जन पान किये तें।
मिटहिं पाप परिताप हिय तें॥

अर्थ—काम, क्रोध, मद और मोह को नष्ट करनेवाला, विमल-विवेक और वैराग्य को बढ़ानेवाला है। आदर के साथ मज्जन और पान करने से हृदय का पाप और परिताप नष्ट हो जाता है।

काम—श्रीगोस्वामीजी ने अपनी कविता को सरयू से उपमित करके सरयू नदी की भी महिमा कही। इससे समझ लेना चाहिये कि सरयू नदी भी कामकोहमोहनसावनी और विमलविरागविवेकबढ़ावनी है।

यह काम नसावन तेरहवाँ माहात्म्य, तेरहवें अंश 'समन अमित उतपात सब, भरत चरित जप जाग' का है। भरतजी ने सम्पूर्ण कामनाओं के मूल राज्य का, पिता के देने पर भी, तिरस्कार किया और रामजी को लौटाने के लिये बन गये। जब श्रीरामजी के अनुरोध से वे चौदह वर्ष तक राज्य-शासन के लिये विवस हुए, तब भी भरतजी ने लौटकर, शासन करते हुए भी, नन्दिग्राम में कुटी बनाकर तप किया, यथा—

अवधराज सुरराज सिहाहीं।
दसरथ धन सुनि धनद लजाहीं॥
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
लखन राम सिय कानन बसहीं।
भरत भवन बसि तप तन कसहीं॥
दोउ दिसि समुझि कहत सब लोगू।
सब विधि भरत सराहन जोगू॥

अतः इस चरित के श्रवण मनन से काम नष्ट होता है।

कोह—अर्थात् रामयश क्रोध का नाश करनेवाला है। यह माहात्म्य चौदहवें अंश 'कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जल मल बक काग' का है। श्रीरामचरित में कलि के अघ और खल के अवगुन का भी यत्र तत्र कथन है, अतः वे भी रामचरित्र के अन्तर्गत आ गये। सो उनका भी माहात्म्य है। जो कलियुग के अघ का श्रवण

मनन करेगा, उसके मन में यह बात अवश्य आवेगी कि विरोध होना कलि का स्वभाव है, यथा—"कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा" अतः वह अपने विरोधी पर भी क्रोध न करेगा, खल भी अप्रसन्न न होगा, समझेगा कि इसका यही स्वभाव है, अतः उसके क्रोध का नाश हो जावेगा।

मद—रामयश मद का नाश करने वाला है। यह माहात्म्य पन्द्रहवें अंश 'हिम हिम सैलसुता सिव व्याहू' का है। इसमें काम ने मद में आकर सम्पूर्ण संसार को बुरी तरह पीड़ित किया। यथा—

कोपेउ जबहिं वारिचर केतू।
छन महँ मिटे सकल श्रुति सेतू॥
ब्रह्मचर्य्य व्रत संयम नाना।
धीरज धर्म ज्ञान विज्ञाना॥
सदाचार जप जोग विरागा।
सभय विवेक कटक सब भागा॥ इत्यादि

इसका फल यह हुआ कि काम का पराभव हुआ। अतः इस कथा से शिक्षा ग्रहण करनेवाले का मद नष्ट हो जाता है।

मोह नसावन—अर्थात् श्रीरामयश मोह का नाश करनेवाला है। यह सोलहवाँ माहात्म्य, सोलहवें अंश "सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू' का है। श्रीरामजन्म के उछाह में सब लोग ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये, यथा—"सुमन वृष्टि आकाश ते होई। ब्रह्मानंद मगन सब कोई॥" अतः इस चरित को मोहनाशक कहा।

विमल विवेक—श्रीरामयश निर्मल विवेक का बढ़ानेवाला है। यह सत्रहवाँ माहात्म्य क्रमप्राप्त सत्रहवें अंश 'वरनव राम विवाह समाजू' का है। इसमें वेद के चारों तत्व जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय के विभुवों (विराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म) का अपनी अपनी अवस्थाओं के साथ वर्णन है, यथा—

सुन्दरी सुन्दर वरन्ह सह सब एक मण्डप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभुन सहित विराजहीं।।

यहाँ उत्प्रेक्षा के व्याज से श्रीगोस्वामीजी ने वेद के रहस्य का उद्घाटन कर दिया। अन्यत्र स्पष्ट भी कहा है, यथा 'तुरीयमेव केवलम्'।

विराग बढ़ावन—यह माहात्म्य अठारहवें अंश 'ग्रीषम दुसह राम वन गवनू' का है। यह कथा वैराग्य की बढ़ानेवाली है। राग अथवा अर्थ और काम की पराकाष्ठा राज्य में ही है, उस राज्य को श्रीरामचन्द्र ने पिता के वचनबद्ध हो जाने के कारण, बिना किसी कष्ट के त्याग दिया। यथा—राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। अपने राज्य-प्राप्ति से मुनियों के सङ्ग, माता के हित, पिता के वचन और भरत के युवराज होने को अधिक माना, यथा—तात वचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ। मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु, सब मम पुण्य प्रभाउ॥ इस कथा से शिक्षा ग्रहण करनेवाले का निश्चय वैराग्य बढ़ेगा।

सादर—पुण्य नदियों में आदर सहित स्नान करने से ही मनुष्य फल का भागी होता है, नहीं तो कितने कछुवे, मछली, मेंढक दिन रात नदी में ही रहते हैं। इसी भांति आदर के साथ श्रवण करने से ही यथार्थ फल होता है।

मज्जन पान किये ते—नदी के पक्ष में जिसे सादर मज्जन पान कहते हैं, वही कविता सरित के पक्ष में प्रसन्न मन होकर सुनना और समझना है, यथा—सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।

मिटहिं पाप—यह उन्नीसवाँ माहात्म्य उन्नीसवें अंश 'वर्षा घोर निसाचर रारी' का है। इसमें भगवान् से वैर करनेवाले को भी सब पाप मिटकर परम गति मिली है, अतः कथा से यह शिक्षा मिली कि परमेश्वर से अपेक्षा न चाहिये, प्रीति न कर सके तो वैर ही करे, कोई सम्बन्ध अवश्य बना रक्खे। पाप के मिटने का यही अचूक उपाय है, यथा—

सनमुख होय जीव मोहिं जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

अतः यह कथाभाग पाप का मिटानेवाला है। मिटहिं कहने से यह भाव है कि पाप का संस्कार भी नहीं रह जाता।

परिताप हिये ते—यह बीसवाँ माहात्म्य बीसवें अंश 'राम राज सुख विनय बड़ाई। विसद सुखद सोइ सरद सोहाई' का है। रामजी के वनवास से प्रजाओं को बड़ा परिताप था। अवधि आस सब राखहिं प्राना। सो रामजी के राज्य से प्रजा का परिताप मिटा। त्रेता में सतयुग की करणी हो गई। रामराज में—

बयरु न कर काहू सन कोई।
राम प्रताप विषमता खोई॥
वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सखहिं नहिं भय सोक न रोग॥
जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं।
बैठि परस्पर इहै सिखावहिं॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहिं।
सोभा सील रूप गुन धामहिं॥

अतः जिन लोगों ने रामराज्य से शिक्षा ग्रहण किया, निश्चय उनके हृदय का परिताप मिटेगा।

जिन्ह एहि वारि न मानस धोए।
ते कायर कलि काल विगोए॥
तृषित निरखि रवि कर भव वारी।
फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥

अर्थ—जिसने इस जल से मन को न धोया, वे काल से ठगे गये कादर हैं, मरु मरीचिका को देखकर प्यासे मृग की भाँति जीव दुखी हुए घूमेंगे।

एहि वारि—भाव यह कि ऐसे बीस दिव्य गुणों से युक्त जो श्री रामयश वारि है, सो किसके आदर का पात्र न होगा? ऐसे अमूल्य

दिव्य वस्तु से जो लाभ न उठावे, उसके ऐसा अभागा कौन होगा ? दूसरा भाव यह कि मानसरोवर से श्रीरामचरितमानस के अवगाहन में तो बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ थीं। गृहकार्य नाना जञ्जाल को छोड़ना, मद मोह मान का अतिक्रमण करना, कुतर्कों का पार करना, कुसङ्ग और कुपंथ को डाक जाना. ये सब बातें इस काल में होना कठिन है, और बिना ऐसा किये श्रीरामचरितमानस तक पहुँचना कठिन है। पर अब उसी यश का काव्य द्वारा खुले मैदान प्रचार हो रहा है, उसी मानसरोवर का जल सरयू नदी द्वारा पहाड़ से नीचे आकर मैदान में बह रहा है। अब कोई भी उस जलमें अवगाहन और उसका पान कर सकता है।

जिन न मानस धोए—ऐसा पावन जल खुले मैदान बह रहा है, उससे जो लाभ न उठावे, आचमन मार्जन न करे। ऐसा पवित्र रामयश कविता रूप से अपने देश में प्रचलित हो चला है, उसे जो न सुने न समझे। भाव यह कि जल से शरीर का प्रक्षालन होता है, और रामसुयश से मन का प्रक्षालन होता है। जल दुर्लभ हो तौ भी सौ प्रयत्न करके स्नान करना प्राप्त है, इसी भाँति श्रीरामयश के परम दुर्लभ होने पर भी सहस्र प्रयत्न करके उससे मन को प्रक्षालन करना प्राप्त है, किं पुनः जब कि उसका मिलना अति सुगम हो गया है। जो ऐसे अवसर से लाभ नहीं उठाते—

ते कायर—वे कादर हैं। भाव यह कि महा आलसी हैं, भाग्य भाग्य चिल्लानेवाले हैं, यथा—कादर मन कहु एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥ इतना पुरुषार्थ भी किया नहीं होता कि अपने देश में बहती हुई नदी में स्नान कर लें, अपने देश में प्रचलित रामयश काव्य को सुनें समझें।

कलिकाल बिगोये—उन्हें कलियुग ने ठग लिया है। ठगनेवाले उलटी बात समझाकर उलटी बुद्धि कर देते हैं, सो कलिकाल के कारण उनकी उलटी बुद्धि हो गई है। आनन्दकंद श्रीरामचंद्र का यश भी आनन्दमय है। इन कलियुग से ठगाए हुओं की ऐसी बुद्धि विपरीत हो गई है कि रामयश में उन्हें सुख की बुद्धि ही नहीं होती।

निरखि रवि कर भववारी—मरु देश में दो पहर के सूर्य्य की किरन पड़ने से उस वालुकामय देश में नदी का भ्रम होता है। उसमें तरङ्ग आदि सब दिखाई पड़ते हैं। वहाँ एक बूंद पानी नहीं होता। इसी भाँति यह सांसारिक विषय सुखमय प्रतीत होता है, पर यहाँ सुख का नाम भी नहीं है।

तृषित मृग इव—दोपहर के समय प्यासा मृग उस मरुमरीचिका नदी की ओर दौड़ता है। जितना वह दौड़ता है, नदी और दूर होती चली जाती है। दौड़ने से मृग की प्यास और बढ़ जाती है, आशा लगाये मृग दौड़ता ही चला जाता है, अन्त में दुख पाता हुआ थकावट और प्यास से मर जाता है।

जीव दुखारी फिरिहहिं—ये और कलियुग से ठगे हुए कादर जीव उन्हीं मृग की भाँति झूठे सुख की आशा में सांसारिक सुख के पीछे दौड़ते दौड़ते मर जाते हैं। जब से होश सँभाला सुख की प्यास से सांसारिक विषयों के पीछे दौड़ते चले आये, सुख कभी न मिला। हाथ लगने पर भी उंगलियों के बीच से निकल गया, पर आशा लगाये दौड़ते चले जायंगे और एक दिन काल के ग्रास हो जावेंगे, परंतु जो उक्त (श्री रामयश) सलिल में स्नान करेंगे वे संसाररूपी मरुमरीचिका में न जलेंगे, यथा—

श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये।
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥

मति अनुहारि सुवारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहिं, कह कवि कथा सुहाइ॥

अर्थ—बुद्धि के अनुसार सुंदर जल के गुणगणों की गणना करके अपने मनको नहला कर और भवानी शङ्कर को सुमिरकर कवि सुंदर कथा कहता है।

मति अनुहारि—भाव यह कि भगवान् के गुणगण अनंत हैं, यथा—राम अनंत अनंत गुनानी। और गुणों का प्रकाश चरित से ही

होता है, अतः रामयश के गुण वर्णन नहीं किये जा सकते, सब ने मति अनुहार ही कहा है, यथा—

शङ्कर वचन—मति अनुरूप कथा मैं बरनी।
गरुड वचन—कहेउ नाथ हरि चरित अनूपा।
व्यास समास स्वमति अनुरूपा।

याज्ञवल्क्य वचन—कहौं सो मति अनुहारि अब उमा सम्भु संवाद। अतः गोसाईंजी भी 'मति अनुहारि' कह रहे हैं।

सुबारि गुनगन गनि—जैसा सुकवि हो वैसे ही अधिक गुणगण उसके हृदय में प्रतिभात होते हैं, यथा—सुकवि सरद नभ मन उडगन से। गोसाईं जी कहते हैं कि जितने प्रतिभात होते हैं उतना भी गिन न सका, अतः यथामति ही गिन पाया, अथवा गुण के गणों की मैंने गणना की, गुणों की तो हो ही नहीं सकती।

मन अन्हवाइ—भाव यह कि श्रीरामयश के गुणगणों की गणना करने में ही मन का उसमें अवगाहन हो जाता है। यहाँ श्रीगोस्वामीजी मन के स्नान कराने की विधि बतला रहे हैं कि श्रीरामयश को सुनकर श्रीरामजी के गुणों की गणना करना चाहिये तब श्रीरामयश में स्नान सम्भव है।

सुमिरि भवानी संकरहि—जो वेदानु शासन है कि 'मातृदेवो भव, आचार्यदेवो भव' सो यह तीनों मेरे लिए भवानी शंकर ही हैं, यथा—गुरु पितु मातु महेश भवानी, दूसरे यह कि भाषा को प्रभावयुक्त बनानेवाले भी भवानी शंकर ही हैं, वे ही मेरी भाषा को प्रभावयुक्त कर देवेंगे, यथा—

कलि विलोकि जगहित हर गिरिजा।
"सावर मंत्र जाल जिन सिरजा॥
अनमिल आखर अर्थ न जापू।
प्रगट प्रभाव महेस प्रतापू॥
सो महेस मो पर अनुकूला।
करिहिं कथा मुदमंगलमूला॥

सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ।
वरनउँ राम चरित चित चाऊ॥"

तीसरे यह कि उन्हीं की कृपा से मैं कवि हुआ, यथा—

संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी।
राम चरित मानस कवि तुलसी॥

अतः उन्हीं को स्मरण करके कथा कहता हूँ।

कह कवि—जब से शंभु के प्रसाद से सुमति हुई है तब से गोस्वामीजी अपने को कवि कहने लगे, अतः मानस-प्रसङ्ग में 'कवि' से ही उपक्रम और 'कवि' से ही उपसंहार करते हैं।

कथा सोहाई—कवि में सामर्थ्य है कि तोता मैना की कथा को भी सोहाई कर दें फिर यदि सोहाई कथा पर उन्हें कविता करनी हो तो कहना ही क्या है, यहाँ तो—

मंगल करनि कलिमल हरनि,
तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की,
ज्यौं सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि,
होइहि सुजन मन भावनी।
भव अङ्ग भूति मसान की,
सुमिरत सोहावनि पावनी॥

श्रीमानसप्रसंगस्य टीकां भावप्रकाशिकाम्।
रामार्पणं करोम्यद्य तेन मे प्रीयताम् प्रभुः॥



॥ श्री राम ॥

मानस सङ्घ के नियम

उद्देश्य—विश्व कल्याण ।

उपाय—गो० तुलसीदास कृत रामचरितमानसका प्रचार ।

सदस्य—रामचरितमानसके पाठ करने की योग्यता वाले सभी स्त्री-पुरुष इसके सदस्य हो सकेंगे ।

कर्त्तव्य—(१) प्रत्येक सदस्य को वर्ष में कम से कम दो बार रामचरितमानसका नवान्हिक अथवा० मासिक पारायण करनेका वचन देना होगा ।

(२) यथासम्भव यह पारायण चैत्र शुक्ल १ से ९ तक तथा आश्विन शुक्ल १ से ९ तक किये जांयगे ।

(३) अधिक संख्यामें पारायण करना उत्तम है ।

(४) प्रत्येक सदस्यका कर्त्तव्य होगा कि वह कमसे दो नये सदस्य बनावे ।

शुल्क—प्रत्येक सदस्य को प्रवेश शुल्क ॥) प्रधान कार्यालय को देना होगा । वार्षिक या मासिक चन्दा न लगेगा । प्रधान कार्यालय से नियमादि की तथा अन्य वितरणार्थ प्रकाशित पुस्तकें, आवश्यक सूचनाएँ आदि मुफ्त मिला करेंगी ।

कार्यालय—सङ्घ का प्रधान कार्यालय रामवनमें है ।

शाखा—(१) जिस स्थान में ९ सदस्य हो जाँयगे वहाँ शाखा स्थापित हो जायगी ।

(२) शाखाके सदस्यों को मिलकर अपना मन्त्री चुन लेना चाहिये ।

(३) चैत्र तथा आश्विनके पारायण सामूहिक कराने का प्रयत्न कराना शाखाका कर्त्तव्य होगा ।

(४) मन्त्री प्रचार कार्य तथा शाखा सम्बन्धी पत्र व्यवहार किया करेंगे ।

शारदाप्रसाद
मन्त्री, मानस सङ्घ, रामवन, सतना,

मानस प्रेमियो,

मणि——————माला

मंगाइये।

मणि—हिन्दी का एक मात्र श्री रामचरितमानस तथा तुलसी सम्बन्धी मासिक पत्र "मानस-मणि" वार्षिक मूल्य ३)

माला-धार्मिक (विशेष कर रामायण सम्बन्धी) पुस्तकों की मालायें

१—श्री मानस रत्नावली (ग्रन्थमाला)

२—श्री महेन्द्र पुस्तकमाला

३—श्री कौशलेन्द्र कथामाला

४—श्री रामदास भक्तमाला

प्रत्येक माला में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। अनेक प्रेस में हैं।

२) जमा करके स्थाई ग्राहक बनिये। जैसे जैसे पुस्तकें छपेंगी, आपके नाम भेजी जाँयगी।

मणि-माला मंगाने का पता—

मंत्री

मानस संघ

पो० रामवन

वाया सतना।

हमारा अबतकका प्रकाशन

१—श्रीरामचरितमानसमें ब्रह्मचर्य जीवन |—) अ प्र
(श्री स्वामी स्वरूपानन्दजी)

२—श्रीरामचरितमानसमें श्रीहनुमानजी |—)
(श्रीजानकी राय 'जनक')

३—श्रीरामचरितमानसमें वीर रस |—)
(श्रीशारदाप्रसादजी)

४—श्रीरामचरितमानसमें शत्रुघ्न कुमार |)
(श्रीसुदर्शन सिंह जी)

५—नव निर्झरिणी [नवधा भक्ति पर ६ कहानियां] |—)
(श्री 'चक्र')

६—शबरी मंगल =)
(श्रीशम्भुप्रसादजी बहुगुना एम० ए०)

७—संगीत रामायण (द्वितीय संस्करण) ≡)
(श्रीस्वामी शिवानन्दजी सरस्वती)

८—मानस-प्रसङ्ग [पाँचो भाग]
(मानस राजहंस श्री पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी)

९—ध्यान के समय ||≡)
(एफ० जे० अलेक्जेण्डर)

१०—अष्टदल (कहानियाँ) |=)
(श्री 'चक्र')

११—नूतन नवरत्न (कहानियाँ) |=)
(श्री 'चक्र')

मिलने का पता:—

मन्त्री—मानससंघ,

पो० रामवन, वाया सतना।